।। श्रीहरिः ।।

426▲

# सत्संगका प्रसाद

स्वामी रामसुखदास

॥ श्रीहरिः ॥

# सत्संगका प्रसाद

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

स्वामी रामसुखदास

॥ श्रीहरिः ॥

# नम्र निवेदन

प्रस्तुत पुस्तकमें परम श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजद्वारा बीकानेरमें चातुर्मास्य सत्संग सं० २०४२ के अवसरपर किये गये कुछ विशेष प्रवचनोंका संग्रह किया गया है। ये प्रवचन सभी साधकोंके लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उपयोगी हैं। कल्याणके इच्छुक सभी भाई-बहनोंसे मेरा निवेदन है कि वे इनका अध्ययन-मनन करके लाभ उठानेकी चेष्टा करें।

विनीत—

**प्रकाशक**

❑ ❑

॥ श्रीहरि: ॥

# विषय-सूची


| विषय | पृष्ठ-संख्या |
| --- | --- |
| १—खण्डन-मण्डनसे हानि | ५ |
| २—एक निश्चय | १२ |
| ३—कर्म किसके लिये? | १७ |
| ४—विकार आपमें नहीं हैं | २५ |
| ५—राग-द्वेषका त्याग | ३० |
| ६—सत्संगकी आवश्यकता | ४१ |
| ७—अहंताका त्याग | ५८ |
| ८—ममताका त्याग | ६४ |
| ९—मन-बुद्धि अपने नहीं | ७३ |


❑❑

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# सत्संगका प्रसाद

## खण्डन-मण्डनसे हानि

किसीकी बातका खण्डन करनेसे आपसमें संघर्ष बढ़ता है। हम दूसरेके मतका खण्डन करेंगे तो वह हमारे मतका खण्डन करेगा, जिससे कलह ही बढ़ेगा। अतः हो सके तो दूसरेको शान्तिपूर्वक अपनी बातका, अपने सिद्धान्तका तात्पर्य बताओ और यदि वह सुनना नहीं चाहे तो चुप हो जाओ। अपनी हार भले ही मान लो, पर संघर्ष मत करो।

सरदारशहरके 'टीचर ट्रेनिंग कॉलेज' की एक बात है। वहाँ एक सज्जनने कहा कि देशका जितना नुकसान हुआ है, वह सब ईश्वरवादसे, आस्तिकवादसे ही हुआ है। मैं चुप रहा तो उन्होंने कहा कि 'बोलो!' तो मैंने कहा कि 'आपने अपना सिद्धान्त कह दिया। आपको मेरा सिद्धान्त मान्य नहीं है और मुझे भी आपका सिद्धान्त मान्य नहीं है। अब बोलनेकी जगह ही नहीं है और जरूरत भी नहीं है।' इस तरह हमारेपर कोई आक्रमण कर दे तो सह लो। सहनेसे, निर्विकार रहनेसे अपना मत, सिद्धान्त मजबूत होता है, संघर्षसे नहीं। निर्विकार रहनेमें जो शक्ति है, वह और किसी उपायमें नहीं है। आपसे अपने इष्टकी निन्दा न सही जाय तो वहाँसे उठकर चले जाओ; कान मूँद लो, सुनो मत। कारण कि ऐसे आदमियोंको भली बात भी बुरी लगती है। विभीषणने रावणको अच्छी सलाह दी, पर रावणने विभीषणको लात मारी! अतः शान्त रहना बहुत अच्छा है। अपनेसे जो सहा नहीं जाता, यह अपनी कमजोरी है। यह तो ठाकुरजी लीला करते हैं आपको पक्का बनानेके लिये! यदि सहा न जाता हो तो भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! हम सह नहीं सकते। कृपा करो, सहनेकी शक्ति दो।'

दूसरा हमारे मतका, हमारे इष्टका खण्डन करे तो यह हमारेको बुरा लगता है और हम अपने इष्टका मण्डन करने लगते हैं। परन्तु वास्तवमें अपने इष्टका मण्डन करनेसे, प्रचार करनेसे उसका प्रचार नहीं होगा। आप चुप रह जाओ। जैसे, काकभुशुण्डिजीने पूर्वजन्ममें लोमश ऋषिके पास जाकर कहा कि मेरेको रामजीका ध्यान बताओ, तो लोमश ऋषिने अच्छा पात्र समझकर उन्हें ज्ञानका उपदेश दिया। लोमशजीने बार-बार ज्ञानकी बात कही, पर काकभुशुण्डिजीने उस बातको स्वीकार नहीं किया और अपनी बात कही। इससे लोमशजीको गुस्सा आ गया और उन्होंने शाप दे दिया कि तू कौएकी तरह मेरी बातसे डरता है; जा, तू कौआ हो जा! काकभुशुण्डिजी कौआ बन गये। कौआ बननेपर भी उनको न भय लगा, न दीनता आयी—***'नहिं कछु भय न दीनता आई'*** (मानस, उत्तर० ११२।८)। लोमशजीने जब ऐसी सहनशीलता देखी तो उन्होंने प्रेमपूर्वक उसे पासमें बुलाया, रामजीका मन्त्र और ध्यान बताया। इस विषयमें काकभुशुण्डिजीने कहा है—

**भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्हि महारिषि साप।**
**मुनि दुर्लभ बर पायउँ देखहु भजन प्रताप॥**

(मानस, उत्तर० ११४ ख)

भजन क्या था? सहनशीलता, शान्त रहना, इस भजनके प्रतापसे मुनिने वरदान दिया कि तुम्हारे रहनेके स्थानसे योजनभर तुम्हारे पास माया नहीं आयेगी। अतः शान्त रहनेमें बहुत बड़ी शक्ति है।

एक मार्मिक बात है कि आपके इष्टका खण्डन होता है तो वह आपके मण्डन करनेसे नहीं मिटेगा। आप मण्डन करेंगे तो दूसरा और तेजीसे खण्डन करेगा। मण्डन करनेमें एक मार्मिक बात है कि आप अपने इष्टको कमजोर मानते हैं। इष्ट ऐसा कमजोर नहीं है कि उसको हमारी सहायतासे कोई बल मिलेगा। हम अपने इष्टका जितना पक्ष लेते हैं, उतना ही हम अपने इष्टको कमजोर मानते हैं। हम जितना ही अपने इष्टको दूसरोंपर लादना चाहते हैं, दूसरोंको मनवाना चाहते हैं, इष्टपर

हमारी भक्ति उतनी ही कम होती है। आपको दीखे या न दीखे, पर है ऐसी ही बात।

हमारेमें पहली कमी तो यह है कि हम अपनी बड़ाई चाहते हैं। हमसे इष्टकी निन्दा सही नहीं जाती, उसको हम सह नहीं सकते। परन्तु साधकको पता नहीं लगता कि मुझे किस बातका दुःख हो रहा है। हम अपने इष्टका मण्डन करते हैं। उस मण्डनमें हम अपने इष्टको कमजोर मानते हैं। कैसे? यदि हम अपने इष्टको कमजोर न मानें तो क्या हमारे इष्टको मण्डनकी आवश्यकता है? खण्डन करनेवालेके सामने अपने इष्टका मण्डन करके क्या हम अपने इष्टकी सहायता करते हैं? अगर सहायता करते हैं तो हमने अपने इष्टको कमजोर ही सिद्ध किया!

अपने इष्टकी निन्दा नहीं सुन सकते तो मत सुनो, पर हमारी सहायतासे उनको बल मिल जायगा, हम अपने इष्टको सिद्ध कर देंगे—यह बात नहीं है। यदि वह खण्डन करनेवाला व्यक्ति हमारी बात सुनना चाहे तो सुनाओ; क्योंकि वह सुनना चाहेगा, तभी काम ठीक होगा। जैसे, आप सुनना चाहते हैं तो मैं आपको व्याख्यान सुनाता हूँ; परन्तु मैं बाजारमें जाकर सुनाऊँ तो कोई भी नहीं सुनेगा। जो सुननेके लिये तैयार होगा, वही सुनेगा। जो सुननेके लिये तैयार नहीं है, उसको सुनानेसे अपने इष्टका अपमान ही होगा। उसके सामने हम जितना ही अपने इष्टका मण्डन करेंगे, उतनी ही उसकी खण्डनकी वृत्ति तेज होगी और उसकी हमारे इष्टपर अश्रद्धा होगी।

एक गहरी बात है कि सब परमात्माके अंश होनेसे जैसे हम अपना अपमान नहीं सह सकते, ऐसे ही खण्डन करनेवाला भी अपना अपमान नहीं सह सकता। उसकी बात कटेगी तो उसको बुरा लगेगा ही। बुरा लगेगा तो उसके भीतर हमारे इष्टके खण्डनकी अनेक युक्तियाँ पैदा होंगी, खण्डनकी युक्तियोंका प्रवाह पैदा होगा। फिर उसमें सत्य-असत्य, न्याय-अन्यायका विचार नहीं रहेगा।

एक जल्पकथा होती है, एक वितण्डाकथा होती है और एक वादकथा होती है। जल्पकथा वह होती है, जिसमें वक्ता अपनी बात कहता चला जाय। वितण्डाकथा वह होती है, जिसमें एक सोचता है कि उसकी बातका खण्डन कैसे हो और दूसरा भी यही सोचता है कि इसकी बातका खण्डन कैसे हो? यह वितण्डावाद सबसे नीचा कहा गया है। वादकथा वह होती है, जिसमें दोनों शान्तचित्तसे सत्य-असत्यका निर्णय करते हैं। सत्य क्या है? वास्तविकता क्या है?—इस बातको समझनेके लिये दोनों शान्तचित्तसे विचार करते हैं। इस वादकथाको भगवान्‌ने अपना स्वरूप बताया है—‘**वादः प्रवदतामहम्**’ (गीता १०। ३२)।

आज जो एक-दूसरेको दबाकर अपनी उन्नति चाहते हैं कि इससे काम ठीक हो जायगा—इसका नतीजा बड़ा भयंकर होगा। दबानेसे शक्ति दबती नहीं है। खण्डन करनेवाला भी परमात्माका अंश है, वह अपना तिरस्कार कैसे सहेगा? सह नहीं सकेगा, उलटे वह हमारे इष्टका, हमारे मतका और जोरसे खण्डन करेगा। उस जोरदार खण्डनमें हम ही निमित्त होते हैं। मैंने कई बार व्याख्यानमें कहा है कि अपने मतके मण्डनमें यदि हम दूसरेके मतका खण्डन करते हैं तो वास्तवमें हम दूसरेको अपने मतके खण्डनका निमन्त्रण देते हैं कि तुम भी हमारे मतका खण्डन करो! अतः इससे कोई फायदा नहीं होगा, प्रत्युत दोनोंका नुकसान होगा।

हमारा अपने मतमें सद्भाव तो कम है, पर जिद ज्यादा है, इसीलिये हम दूसरेके मतका खण्डन करते हैं। अपने मतके अनुसार चलनेसे तो कल्याण होता है, पर अपने मतका पक्ष लेनेसे कल्याण नहीं होता। पक्ष लेनेमें ‘हमारे इष्टका मण्डन कैसे हो’—इस तरफ ही वृत्ति रहती है, ‘हमारा इष्ट क्या कहता है’—इस तरफ ध्यान ही नहीं जाता। अतः दूसरेके मतका खण्डन करनेमें लग जायँगे तो हमारेमें अपने मतका पक्षपात तो रहेगा, पर हम अपने मतके अनुयायी नहीं बन सकेंगे। हम

केवल अपने मतके मण्डनमें ही तत्पर हो जायँगे तो हम उसके अनुयायी बनकर अपना कल्याण नहीं कर सकेंगे।

आज दशा क्या हो रही है? सबमें अपने मतका मण्डन और दूसरेके मतका खण्डन करनेकी ही धुन है, परन्तु यह काम साधकका नहीं है। साधकका काम तो अपना कल्याण करना है। हम जिस मतका प्रचार चाहते हैं, उस मतके अनुसार अपना जीवन बनाना चाहिये।

**यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।**
**स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥**

(गीता ३। २१)

'श्रेष्ठ मनुष्य जो-जो आचरण करता है, दूसरे मनुष्य वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण देता है, दूसरे मनुष्य उसीके अनुसार आचरण करते हैं।'

—इस श्लोकपर आप विचार करें। इसके पूर्वार्धमें यत्, यत्, तत्, तत् और एव—ये पाँच शब्द आये हैं और उत्तरार्धमें यत् और तत् ये दो ही शब्द आये हैं। इसका तात्पर्य है कि जहाँ जबानसे कहनेसे दो गुना असर पड़ता है, वहाँ आचरण करनेसे पाँच गुना असर पड़ता है। अतः आचरण दामी है, प्रचार दामी नहीं है। वास्तवमें देखा जाय तो प्रचार उसीके द्वारा होता है, जिसका आचरण वैसा ही होता है। उसकी वाणीमें वजन होता है। जैसे, एक बन्दूकमें गोली होती है और एक बन्दूकमें केवल बारूद होता है। आवाज तो बारूद भी कर देगा, पर चोट गोली ही करेगी। ऐसे ही अपना जो आचरण है, वह गोलीके समान है, जिसका दूसरोंपर असर पड़ता है।

दूसरा हमारे इष्टका खण्डन क्यों करता है—इसमें एक बात और समझनेकी है, आप ध्यान दें! वह हमारे सामने खण्डन करता है तो हमारे अनुष्ठानमें कमजोरी है। अगर हमारा अनुष्ठान कमजोर नहीं होता तो वह खण्डन नहीं कर सकता। हम शान्तिपूर्वक अपने इष्टपर पक्के रहते तो उसमें खण्डन करनेकी हिम्मत नहीं होती; और यदि कोई

हमारे इष्टका खण्डन कर रहा होता तो हमारे वहाँ जाते ही वह चुप हो जाता! जैसे, हम रामजीके भक्त हैं। यदि रामजीमें हमारा पूरा विश्वास, पूरी भक्ति होगी तो खण्डन करनेवाला हमारे सामने चुप हो जायगा, खण्डन नहीं कर सकेगा; और हम चुपचाप रहेंगे तो उसपर हमारा असर पड़ जायगा।

जिसके भीतर सच्चाई है, उसके लिये कई आदमी कहते हैं कि 'हम उसके सामने झूठ नहीं बोलेंगे'। इसी तरह हमारी भक्ति तेज होगी तो उसका दूसरोंपर असर पड़ेगा, खण्डन करनेवालेपर भी असर पड़ेगा और वह चुप हो जायगा; क्योंकि हमारा इष्ट कमजोर नहीं है। सत्यमें बहुत बल है, असत्यमें बल नहीं है। खण्डन करनेवालेमें बल नहीं होता। कबीर साहबने कहा है—

**निंदक तू गल जावसी, ज्यूँ पानीमें लूण।**
**कबीर थारे राम रुखालो, निंदक थारे कूण॥**

मैंने सन्तोंकी बातें सुनी हैं। जो असली प्रचारक सन्त होते हैं, वे कुछ नहीं कहते, केवल अपनी मस्तीमें रहते हैं। उनके द्वारा जैसा ठोस प्रचार होता है, वैसा जबानसे नहीं होता। असली असर उनका ही पड़ता है। उनके दर्शनमात्रका दूसरोंपर असर पड़ता है। दत्तात्रेयजी महाराजके दर्शनमात्रसे एक वेश्या सब कुछ छोड़कर भगवान्‌के भजनमें लग गयी थी। दत्तात्रेयजीने कुछ भी नहीं कहा। शान्त रहनेसे स्वाभाविक असर पड़ता है। शान्तिमें, अपने मतका दृढ़तासे पालन करनेमें बड़ी शक्ति है। एक सन्तने कहा है —'लोग समझते हैं कि यह साधु है, ईश्वरका प्रचार करता है, पर मैं ईश्वरका लेशमात्र भी प्रचारक नहीं हूँ। ईश्वरका प्रचार करनेमें मेरेको शर्म आती है कि क्या हमारा ईश्वर इतना कमजोर है कि उसका प्रचार हमको करना पड़े।'

जो सुनना चाहे, उसीको सुनाना चाहिये। जो सुनना ही नहीं चाहे, उसको क्या कहा जाय? अपनी बात जबरदस्ती किसीपर लादेंगे तो उसके भीतर उलटी बात पैदा होगी। एक साधु बीमार थे। सन्निपातमें

वे उठें तो लोग उनको दबायें। वे फिर उठें तो लोग फिर दबायें। उनको मैंने कहा कि इनको दबाओ मत। बल तो भीतर है नहीं, अपने-आप शान्त हो जायँगे। आप ज्यों दबाओगे, त्यों ही इनका बल बढ़ेगा। ऐसे ही आप अपनी बात जबरदस्ती दूसरेपर लादोगे तो उसके भीतर विपरीत बात पैदा होगी, जिससे उसका नुकसान तो होगा ही आपका भी नुकसान होगा। सेठजीने कहा था—कोई सत्संगी भाई कहता है कि हमारा अमुक काम है, हम घर जायँगे। अगर हम उसको कहें कि अभी क्यों जाते हो? संसारका काम तो ऐसे ही होता रहेगा तो उसके भीतर घर जानेवाली बात ही जोरसे बढ़ेगी। वह कहेगा कि नहीं महाराज! हमें तो जाना ही पड़ेगा। आपको क्या पता कि हमारा कितना जरूरी काम है? परन्तु उसको यदि यह कहा जाय कि अच्छा, ठीक है, आपका काम हो तो जाना चाहिये तो वह कहेगा कि महाराज! यहाँ सत्संगमें रहते तो अच्छा था, पर क्या करें, जाना पड़ता है! इस प्रकार वह जायगा तो भी सद्भाव लेकर जायगा।

❑❑

# एक निश्चय

भगवद्गीतासे, शास्त्रोंसे और सन्तोंसे मुझे बहुत विलक्षण-विलक्षण बातें मिली हैं। उनमेंसे एक बात आज मैं कहता हूँ। आपलोग कृपा करके ध्यान दें। एक ऐसी सरल बात है, जिससे साधनमें बहुत तेजीसे उन्नति हो सकती है, बड़ा विलक्षण आनन्द प्राप्त हो सकता है, सदाके लिये दुःख-सन्ताप मिट सकता है। परन्तु वह सरल बात किसके लिये है? जो अपना उद्धार चाहता है। मेरा कल्याण हो—यह भाव जितना ही अधिक होगा, उसके लिये यह बात उतनी ही सरल होगी।

हम साधन करते-करते ऊँची स्थितिपर पहुँचते हैं, फिर हमें उस तत्त्वका अनुभव होता है—ऐसा एक प्रकार है। एक प्रकार ऐसा भी है कि साधन करते-करते हम जहाँ पहुँचते हैं, वहाँ हम पहलेसे ही जा बैठें तो उतना लम्बा समय नहीं लगेगा, उतना परिश्रम नहीं पड़ेगा तथा लाभ बहुत जल्दी और विशेष होगा। इस विषयमें भगवान्‌ने कहा है कि 'निश्चयवाली बुद्धि एक होती है और अव्यवसायी मनुष्योंकी बुद्धियाँ बहुशाखाओंवाली तथा अनन्त होती हैं' (गीता २। ४१)। 'दुराचारी-से-दुराचारी मनुष्य भी यदि अनन्यभावसे मेरे भजनमें लग जाता है तो उसको साधु ही मानना चाहिये; क्योंकि उसने निश्चय बहुत अच्छा किया है' (गीता ९। ३०)। इस श्लोकमें आये हुए **'सम्यग्व्यवसितो हि सः'** पदका तात्पर्य भी यही है कि 'अब हमें परमात्माकी प्राप्ति ही करनी है, हमें इस मार्गपर ही चलना है'—ऐसा अटल निश्चय हो जाय। लोग निन्दा करें या स्तुति करें, धन आ जाय या चला जाय, शरीर ठीक रहे या बीमार हो जाय, हम जीते रहें या मर जायँ, पर हम इस निश्चयपर अडिग रहेंगे। इस तरह 'मैं'-पनमें यह भाव कर लिया जाय कि 'मैं तो केवल पारमार्थिक साधक हूँ' तो फिर साधन अपने-आप होगा।

आरम्भमें भी हम अपना सम्बन्ध परमात्मासे मान लें कि 'हम भगवान्‌के हैं और भगवान् हमारे हैं'। यह बात बहुत बार आपने सुनी होगी और बहुत बार मैंने कही भी है,पर आपलोग ध्यान नहीं देते। मैं आज आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस बातपर विशेष ध्यान दें। मुझे तो अपना कल्याण करना है; क्योंकि मैं केवल परमात्मप्राप्तिके लिये ही यहाँ आया हूँ; जन्मा हूँ, दूसरा और कोई मेरा काम नहीं है—ऐसा आपका एक निर्णय हो जाय। इसीको व्यवसायात्मिका बुद्धि कहते हैं। ऐसी बुद्धिसे पापी-से-पापी मनुष्य भी बहुत जल्दी धर्मात्मा बन जाता है '**क्षिप्रं भवति धर्मात्मा**' (गीता ९। ३१)।

एक भूल-भुलैया होती है। उसके भीतर जानेपर फिर बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है। इसी तरह संसारमें ये जो राग-द्वेष हैं, वे भी भूल-भुलैया हैं। यह ठीक है, यह बेठीक है—इसमें मनुष्य ऐसा भूलता है कि इससे निकलना बड़ा मुश्किल हो जाता है। अतः इससे निकलनेके लिये आप एक ही निर्णय कर लें कि 'हमें केवल परमात्माकी तरफ ही चलना है। हमें संसारमें न राग करना है, न द्वेष करना है; न हर्षित होना है, न शोक करना है।' ऐसा जिसका पक्का निश्चय होता है, वह द्वन्द्वोंमें नहीं फँसता और सुखपूर्वक मुक्त हो जाता है—'**निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते**' (गीता ५। ३)। समताका नाम 'योग' है—'**समत्वं योग उच्यते**' (गीता २। ४८)। अतः राग-द्वेष, हर्ष-शोक, ठीक-बेठीक—इन द्वन्द्वोंमें विचलित न होना 'योग' है और इस योगसे युक्त मनुष्य बहुत जल्दी ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है—'**योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति**' (गीता ५। ६)। इस प्रकार सुखपूर्वक और बहुत जल्दी—दोनों बातें आ गयीं। परन्तु यह बात पढ़ लेनेपर, पढ़ा देनेपर, विवेचन कर देनेपर, लोगोंको सुना देनेपर भी जल्दी पकड़में नहीं आती।

इस बातको काममें कैसे लाया जाय—इसकी विधि बताता हूँ। नीतिमें एक श्लोक आया है—

**अमन्त्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।**
**अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः॥**

'संसारमें ऐसा कोई अक्षर नहीं है जो मन्त्र न हो; ऐसी कोई जड़ी-बूटी नहीं है, जो ओषधि न हो; और ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, जो योग्य न हो, परन्तु इस अक्षरका ऐसे उच्चारण किया जाय तो यह अमुक काम करेगा, इस जड़ी-बूटीको इस प्रकार दिया जाय तो अमुक रोग दूर हो जायगा, यह मनुष्य इस प्रकार करे तो बहुत जल्दी इसकी उन्नति हो जायगी—इस प्रकार बतानेवाले पुरुष संसारमें दुर्लभ हैं।'

किस बातको किस रीतिसे काममें लाया जाय, जिससे सुखपूर्वक मुक्ति हो जाय—इसमें आपको यह खास बात बतायी है कि अपना खुदका विचार, निश्चय एक हो जाय कि हमें तो परमात्माकी प्राप्ति ही करनी है। परमात्माकी प्राप्ति भी करनी है—इसमें 'भी' की जगह 'ही' हो जाय और 'ही' पर दृढ़ रहें कि हमें तो केवल इस तरफ ही चलना है। दुःख पायें, सुख पायें, कुछ भी हो जाय, हमें तो अपना उद्धार करना है—ऐसा पक्का विचार करके चलें तो बहुत सुगमतासे, बहुत जल्दी कल्याण हो जाय। इसमें खुदका विचार ही काम आयेगा—

**उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।**
**आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥**

(गीता ६। ५)

'स्वयं अपना उद्धार करे, अपना पतन न करे; क्योंकि यह आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।'

**'बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।'** (गीता ६। ६)

—जिसने अपनेसे अपनेपर विजय कर ली है, उसके लिये यह आप ही अपना मित्र है। अपनेसे अपनेपर विजय करना क्या है कि हम समताको धारण कर लें। मेरेको अपना कल्याण करना है—यह विचार पक्का हो जाय तो समता अपने-आप आ जायगी।

आप और हम विचार करें कि हमारे सामने अनुकूलता-प्रतिकूलता कई बार आयी है और गयी है। हमने सुख भी भोगा है और दुःख भी भोगा है। परन्तु हमें शान्ति तो नहीं मिली! वहम होता है कि ऐसा गुरु मिल जाय तो कल्याण हो जाय; ऐसा परिवार मिल जाय तो कल्याण हो जाय; ऐसी स्त्री मिल जाय तो बड़ा ठीक रहे; ऐसा पुत्र मिल जाय तो बड़ा ठीक रहे; ऐसा मित्र मिल जाय तो हम निहाल हो जायँ; इतना धन मिल जाय तो हम निहाल हो जायँ; ऊँचा पद मिल जाय तो हम निहाल हो जायँ, आदि-आदि। इसमें आप विचार करें कि अनुकूल स्त्री किसीको नहीं मिली है क्या? अनुकूल पुत्र किसीको नहीं मिला है क्या? अनुकूल परिस्थिति किसीको नहीं मिली है क्या? परन्तु क्या वे इच्छाओंसे रहित होकर परमात्माको प्राप्त हो गये? विचार करनेसे दीखता है कि जिसको ये सब अनुकूलताएँ मिली हैं, उसकी इच्छाएँ नहीं मिटी हैं। वह कृतकृत्य, ज्ञात-ज्ञातव्य और प्राप्त-प्राप्तव्य नहीं हुआ है। अतः कोई भी इन परिस्थितियोंसे निहाल हो जाय—यह असम्भव बात है। कारण कि स्वयं बदलनेवाले नहीं हो। बदलनेवाली परिस्थितियोंसे आप ऊँचे कैसे हो जाओगे? नाशवान्‌के द्वारा अविनाशीकी उन्नति कैसे हो जायगी? हो ही नहीं सकती। असम्भव बात है। मैंने इस विषयमें खूब अध्ययन किया है। आप परमात्मप्राप्तिका ही एक निश्चय कर लो, फिर अनुकूलता आपके पीछे दौड़ेगी।

**नाम नाम बिनु ना रहे, सुनो सयाने लोय।**
**मीरा सुत जायो नहीं, शिष्य न मुंड्यो कोय॥**

मीराबाईका नाम आज भी कितने आदरसे लिया जाता है! उनका

नाम लेनेसे, उनके पद गानेसे लोग अपनेमें पवित्रताका अनुभव करते हैं। उनमें क्या बात थी? ***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई। जाके सिर मोर-मुकुट, मेरो पति सोई॥'*** एक ही निश्चय था कि मेरा पति वही है। क्या होगा, क्या नहीं होगा—इस बातकी कोई परवाह नहीं! अहंता बदलनेपर, एक निश्चय होनेपर राग-द्वेष कुछ नहीं कर सकते। इनमें ताकत नहीं है अटकानेकी। केवल हमारा विचार पक्का होना चाहिये।

❑❑

# कर्म किसके लिये ?

आप कृपा करके इस बातको समझनेकी चेष्टा करें, इसका दुरुपयोग न करें। थोड़ी गहरी बात है। वह यह है कि अपने लिये कुछ करना नहीं है। 'अपने' का अर्थ है—स्वयं अर्थात् परमात्माका अंश चेतन; स्वयंके लिये करना कुछ नहीं है। करना जितना होता है, वह सब प्रकृतिके सम्बन्धसे होता है। प्रकृतिके सम्बन्धके बिना करना है ही नहीं। अतः जो कुछ करना है, वह सब शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिके लिये करना है, संसारके लिये करना है, भगवान्‌के लिये करना है; परन्तु अपने लिये कुछ करना नहीं है—यह सार बात है।

हम जो भी कर्म करते हैं, उस कर्मका आरम्भ और अन्त होता है। जिसका आरम्भ और अन्त होता है, उसके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं है; क्योंकि स्वयंका आरम्भ और अन्त नहीं होता। अनन्त जन्मोंसे यह जीव चला आ रहा है, पर इसका कभी आरम्भ और अन्त नहीं हुआ है। यह अनादि और अनन्त है। अतः इसके लिये करना नहीं होता। करना मात्र संसारके लिये होता है।

मेरेको कुछ मिले—यह इच्छा होते ही बन्धन हो जाता है। मिली हुई चीज कभी अपने साथ रहनेवाली है ही नहीं। कृपा करके इस बातपर थोड़ा ध्यान दो। हमें कुछ भी मिल जाय, धन मिल जाय, मान मिल जाय; विद्या,पद, अधिकार मिल जाय, पर ये मिली हुई चीजें हमारे साथ रह नहीं सकतीं। परन्तु परमात्मा सबको मिले हुए हैं और सदा सबके साथ रहते हैं, कभी बिछुड़ते नहीं। उनको न जाननेसे ही उनका अभाव दीखता है। किसी देशमें, किसी कालमें, किसी वस्तुमें, किसी व्यक्तिमें, किसी क्रियामें, किसी घटनामें, किसी परिस्थितिमें परमात्मा न हों—यह है ही नहीं, हो सकता ही नहीं। वे तो निरन्तर रहनेवाले हैं और उनको ही प्राप्त करना है। मिलने और बिछुड़नेवाली चीजोंका आश्रय लेना बड़े भारी अनर्थका कारण

है। मिले हुए शरीर, इन्द्रियाँ, अन्तःकरण आदि अपने कामके हैं ही नहीं। इनको अपने लिये मानते हैं—यह बहुत बड़ी गलती है। इस विषयको ठीक तरहसे समझना चाहिये।

भगवान् कहते हैं—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५। ७) 'यह जीव मेरा ही अंश है।' यह जीव चेतन, अमल और सहज सुखराशि है—'***ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥***' (मानस, उत्तर० ११७। १)। इसमें जड़ता है ही नहीं, तो फिर इसके लिये क्या करना बाकी रहा? इसमें मल है ही नहीं, तो फिर दूर क्या करोगे? यह सहज सुखराशि है, तो फिर इसमें सुख कहाँसे लाओगे? मिली हुई सब चीजें बिछुड़नेवाली हैं। मिली हुई चीजोंका जो आश्रय लेना है, आधार लेना है, उनसे सुखकी आशा रखना है, उनको महत्त्व देना है—यह महान् पतनका कारण है। आप कृपा करके इस विषयको समझ लो तो बहुत ही आनन्दकी बात है।

मिली हुई चीज हमारे साथ रहनेवाली नहीं है; क्योंकि मिली हुई उसको कहते हैं, जो पहले नहीं थी और पीछे भी नहीं रहेगी। परन्तु परमात्मा और उनका अंश जीवात्मा (स्वयं) पहले भी थे और पीछे भी रहेंगे। शरीर, धन-सम्पत्ति, घर-परिवार आदि मिली हुई वस्तुओंका आश्रय लेना, इनको महत्त्व देना खास पतनकी बात है। नित्य-निरन्तर रहनेवालेके लिये ये मिलकर बिछुड़नेवाली वस्तुएँ क्या काम आयेंगी? हाँ, इनका सदुपयोग किया जा सकता है। परन्तु इनका आश्रय लेना और इनसे सुखकी आशा रखना भूल है। खास भूल यही होती है कि हम मिली हुई चीजसे सुख लेते हैं। इस सुखकी आसक्ति ही बाँधनेवाली है। यह आसक्ति साधनको ऊँचा बढ़ने नहीं देती।

कोई भी काम करो, उसका न करनेसे ही आरम्भ होता है और न करनेमें ही उसकी समाप्ति होती है। अतः कर्मका आदि और अन्त होगा ही। ऐसे ही कर्म करनेसे जो कुछ मिलेगा, वह भी आदि-

अन्तवाला होगा। क्रियाका भी आरम्भ और अन्त होता है तथा पदार्थोंका भी संयोग और वियोग होता है। क्रिया और पदार्थ—यह प्रकृति है। प्रकृतिसे सर्वथा अतीत जो परमात्मतत्त्व है, उसीका साक्षात् अंश यह जीवात्मा है। अतः जो क्रियाओंमें और वस्तुओंमें आसक्त है और इनसे अपनी उन्नति मानता है, वह गलतीमें है।

यह बड़े भारी आश्चर्यकी बात है कि धन मिलनेसे हम अपनेको बड़ा मान लेते हैं! अगर हम धनसे बड़े हो गये तो धन बड़ा हुआ कि हम बड़े हुए? धनके बिना तो हम छोटे ही रहे! धन तो आपका कमाया हुआ है। धन आपके पास आता है और चला जाता है। वह आपके पास रहेगा तो आप चले जाओगे। वह साथ रहनेवाला नहीं है। ऐसे ही विद्या, योग्यता, पद, अधिकार आदिसे जो अपनेको बड़ा मानता है, वह बहुत बड़ी गलती करता है। वास्तवमें आप खुद इतने बड़े हैं कि आपसे ही ये वस्तुएँ सार्थक होती हैं। आपसे ही रुपये सार्थक होते हैं, आपसे ही भोजन सार्थक होता है। आपसे ही कपड़े सार्थक होते हैं। संसारकी जितनी वस्तुएँ हैं, वे सब आपसे ही सार्थक होती हैं। आप इन वस्तुओंसे अपनेको बड़ा मानते हो—यह गलती है। मिली हुई चीजसे अपना महत्त्व समझना, अपनेको बड़ा मानना बहुत बड़ी गलती है। अगर यह गलती मिट जाय तो समता अपने-आप आ जायगी; क्योंकि समतामें हमारी स्थिति स्वतःस्वाभाविक है। यह उद्योगसाध्य, कृतिसाध्य नहीं है। करनेकी आसक्तिको मिटानेके लिये ही कर्म करना है, कुछ पानेके लिये नहीं।

हमारा मान हुआ तो उसमें हम राजी हो गये और अपमान हुआ तो हम नाराज हो गये। थोड़ा गहरा विचार करो कि मान होनेसे हमें मिल क्या गया और अपमान होनेसे हमारी हानि क्या हो गयी? आने-जानेवाली वस्तुसे आपको कोई हानि-लाभ नहीं होता। अनादिकालसे कई सर्ग-प्रलय, महासर्ग-महाप्रलय हुए, पर आप स्वयं

वे-के-वे ही रहे—'**भूतग्रामः स एवायम्**' (गीता ८। १९)। ऐसे निरन्तर रहनेवाले आपको मान मिल गया तो क्या हुआ? और अपमान मिल गया तो क्या हुआ? धन मिल गया तो क्या हुआ? और धन चला गया तो क्या हुआ? शरीर मिल गया तो क्या हुआ? और शरीर चला गया तो क्या हो गया? बीमारी आ गयी तो क्या हो गया? और बीमारी चली गयी तो क्या हो गया? ये सब तो आने-जानेवाले हैं—'**आगमापायिनोऽनित्याः**' (गीता २। १४)। आने-जानेवाले पदार्थोंसे राजी और नाराज होना बहुत बड़ी भूल है। इस भूलका अभी त्याग न हो सके तो न सही, पर इस बातको समझ तो लें। ठीक समझ लो तो स्वतःस्वाभाविक त्याग हो जायगा। बालक टट्टी-पेशाब करके उसमें हाथ डालता है; क्योंकि वह समझता नहीं। परन्तु समझनेके बाद फिर छूयेगा क्या? छूनेपर हाथ धोयेगा। आप समझ लें कि ये मान, बड़ाई, सुख, आराम, पद, अधिकार आदि सब मलसे भी निकृष्ट हैं।

मिली हुई वस्तुओंसे केवल दूसरोंका हित करना है, अपने लिये कुछ नहीं करना है। गीता स्पष्ट कहती है—'**ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः**' (१२। ४) 'सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें जिनकी रति है, ऐसे मनुष्य मेरेको ही प्राप्त होते हैं।' जैसे लोभीकी धनमें, भोगीकी भोगोंमें रति (प्रीति) होती है, आकर्षण होता है, ऐसे ही हमारी रति, हमारी लगन, हमारा आकर्षण दूसरोंके हितमें होना चाहिये। सब काम दूसरोंके हितके लिये ही करना है, अपने लिये नहीं करना है। कारण कि अपने लिये करना बनता ही नहीं। प्रकृतिके सम्बन्धके बिना स्वयंमें कर्तापन है ही नहीं।

गाढ़ नींदमें अहंकार भी लुप्त हो जाता है, पर आप रहते हो। हमें यह बात बढ़िया मालूम दी है कि नींदसे पहले भी मैं था तथा नींदके बादमें भी मैं हूँ और नींदमें मेरेको कुछ पता नहीं था—इसका अनुभव तो होता है, पर नींदमें मैं नहीं था—इसका अनुभव

नहीं होता। नींदमें मैं नहीं था और जागनेपर मैं उत्पन्न हो गया—ऐसा आप नहीं मानते। हमने शास्त्रोंकी कई बातें सुनी हैं, पर यह दृष्टान्त किसी पुस्तकमें आया हो—ऐसा हमें याद नहीं है। गाढ़ नींदमें शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार आदिका भान नहीं था—यह तो आप कह सकते हैं, पर गाढ़ नींदमें 'मैं' नहीं था—यह आप नहीं कह सकते। अपनी सत्ताका अनुभव करनेके लिये यह युक्ति बहुत बढ़िया है। गाढ़ नींदमें मेरेको कुछ भी पता नहीं था तो 'कुछ भी पता नहीं था'—इसका तो पता था न? तात्पर्य है कि उस समयमें भी आप थे। ऐसे नित्य-निरन्तर रहनेवाले आपको आने-जानेवाली वस्तु क्या निहाल करेगी?

जो आया है, वह जायगा ही। जिसका संयोग हुआ है, उसका वियोग होगा ही। उसमें राजी-नाराज होओगे तो अपने कल्याणसे वंचित रह जाओगे—इसके सिवाय और कुछ नहीं होनेका है! हमने एक कहानी सुनी है। एक मकानमें गुरु और चेला रहते थे। एक दिन मकानके भीतर एक कुत्ता आ गया। चेला बोला कि महाराज! मकानमें कुत्ता आ गया, क्या करूँ? गुरुने कहा कि किवाड़ बन्द कर दो; क्योंकि उसको यहाँ तो कुछ मिलेगा नहीं और दूसरी जगह जा सकेगा नहीं। अपने पास कुछ है नहीं तो खायेगा क्या? और मकानके भीतर बन्द होनेसे दूसरोंको तंग करेगा नहीं; अतः किवाड़ बन्द कर दो। इसी तरह संसारमें जाते ही किवाड़ बन्द हो जाता है! तात्पर्य है कि जैसे कुत्ता कुछ खानेके लिये घरमें गया तो वहाँ भी कुछ नहीं मिला और घरके भीतर बन्द हो जानेसे बाहर भी नहीं जा सका तो वह दोनों तरफसे रीता रह गया! ऐसे ही आप संसारमें कुछ लेने जाओगे तो संसारमें कुछ मिलेगा नहीं और परमात्माकी तरफसे विमुख हो जाओगे; अतः दोनों तरफसे रीते रह जाओगे। हमें संसारसे कुछ लेना ही नहीं है—इस बातसे आप निहाल हो जाओगे। इस बातको काममें लानेका तरीका है—

**'सर्वभूतहिते रताः'** अर्थात् प्राणिमात्रके हितमें रति हो जाय। तो क्या होगा इससे? हमारेमें जो लेनेकी इच्छा है, वह मिट जायगी। दूसरोंका हित करनेकी, उनको सुख पहुँचानेकी लगन लग जायगी। तो अपनी सुख लेनेकी इच्छा मिट जायगी। सुख लेनेकी इच्छा सर्वथा मिटते ही परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति हो जायगी; क्योंकि आप जहाँ हैं, परमात्मा वहीं पूर्णरूपसे विद्यमान हैं, अंशरूपसे (अधूरे) नहीं। आपको (जीवात्माको) भी अंश तब कहते हैं, जब आप प्रकृतिके अंश शरीरके साथ सम्बन्ध जोड़ते हो। प्रकृतिके अंशके साथ सम्बन्ध न जोड़ो तो आप स्वयं अंशी हो।

संसारसे कुछ भी नहीं पाना है और केवल संसारके हितके लिये ही करना है। स्वयंके लिये कुछ करना है ही नहीं। मनमें जो करनेकी एक रुचि होती है, उस करनेकी रुचिको मिटानेके लिये ही करना है। अगर आप मान-सत्कार आदि लेते रहोगे तो यह करनेकी रुचि कभी मिटेगी नहीं। अपने परिवारके सुखके लिये करो, पर उनसे यह मत चाहो कि वे मुझे सुख देंगे। मैं तो परमात्माका अंश हूँ; अतः उनका दिया हुआ सुख शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धितक ही पहुँच सकता है, मेरेतक नहीं पहुँच सकता। मैंने एक गृहस्थाश्रमकी स्त्रीकी बात सुनी है। किसीने उससे कहा कि ये लोग तेरेको दुःख देते हैं, तो उसने कहा कि मेरेतक दुःख पहुँचता ही नहीं। कितना ही कष्ट दे दो, निन्दा कर दो, अपमान कर दो, वह मेरेतक पहुँचता ही नहीं। कष्ट, अपमान शरीरका होगा, निन्दा नामकी होगी, वे चेतन-तत्त्वतक कैसे पहुँच सकते हैं? अतः कुछ भी पानेकी इच्छा न रखकर केवल संसारके लिये करना है। केवल संसारके लिये करनेसे आत्मज्ञान हो जायगा, बोध हो जायगा। परमात्माकी प्राप्ति चाहो तो वह हो जायगी। मुक्ति चाहो तो मुक्ति हो जायगी, कल्याण हो जायगा, सदा रहनेवाला लाभ हो जायगा।

आपको शरीर, विद्या, बुद्धि, योग्यता आदि जो कुछ भी मिला है,

वह सब-का-सब संसारसे मिला है। संसारसे मिले हुएको बिना शर्त संसारके भेंट कर दो। आप परमात्माके अंश हो; अतः आप परमात्माके शरण हो जाओ। उत्पन्न और नष्ट होनेवालेके शरण मत होओ, उसका आश्रय मत लो। गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

**एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।**
**एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥**

(दोहावली २७७)

संसार आपका है नहीं, आपको मिला ही नहीं, आपतक पहुँचा ही नहीं। ऐसे संसारकी आशा, विश्वास, भरोसा रखना ही जीवकी जडता है, मूर्खता है—

**यह बिनती रघुबीर गुसाईं।**
**और आस-बिस्वास-भरोसो, हरौ जीव-जड़ताई॥**

(विनयपत्रिका १०३)

भगवान्‌से प्रार्थना करो तो जडता मिट जाय अथवा केवल दूसरोंके हितके लिये कर्म करो तो जडता मिट जाय। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, योग्यता आदि सब संसारके लिये हैं, अपने लिये हैं ही नहीं। उत्पन्न और नष्ट होनेवाली चीज अनुत्पन्न तत्त्वके लिये क्या काम आयेगी? थोड़ा विचार करो आप। यह जीव परमात्माका अंश है, चेतन है, अमल है, सहज सुखराशि है, अविनाशी है, तो इसके लिये जड़, विनाशी चीज कैसे काम आयेगी? विनाशी चीज तो विनाशी संसारके हितके लिये, सुखके लिये, आरामके लिये, खर्च करनेके लिये मिली है। उसको आप अपने लिये मानो तो आप जरूर फँस जाओगे, इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है। मान-बड़ाई मिलनेसे आप राजी हो गये—यह कितना बड़ा अँधेरा है! कारण कि जो मिला है, वह बिछुड़ जायगा, रहेगा नहीं। शरीरको अपना मान लिया तो अब सब बीमारियाँ आयेंगी; क्योंकि मूलमें भूल हो गयी। जोड़ लगाते समय पहली पंक्तिके जोड़में ही भूल हो जाय और आगेकी

पंक्तियोंमें बड़ी सावधानीसे जोड़ लगाया जाय, तो क्या वह जोड़ सही हो जायगा? आरम्भमें ही भूल हो जाय तो फिर आगे भूल-ही-भूल होगी। एक कहानी याद आ गयी। एक आदमीको ऊँटपर चढ़ाया और कहा कि कहीं जानेसे पहले हमारा ऊँट तीन बार कूदेगा; अतः सावधान रहना। उसने कहा कि मैं तो पहलेमें ही कूद जाऊँगा, दो बार कूदना बच जायगा! अगर पहलेमें ही भूल हो गयी तो फिर भूल-ही-भूल होगी। इसलिये पहलेमें ही भूल मत करो, शरीरको अपना मत मानो और उसके द्वारा सबकी सेवा करो, हित करो।

❑❑

# विकार आपमें नहीं हैं

परमात्माकी प्राप्ति होनेसे पहले विकारोंकी निवृत्ति हो जाय—यह कोई नियम नहीं है। परन्तु परमात्माकी प्राप्ति होनेके बाद विकार नष्ट हो ही जाते हैं।—'**रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते**' (गीता २। ५९) 'रस-रूपी विकार परमात्माका साक्षात्कार होनेके बाद मिट जाता है।' इसमें एक मार्मिक और बहुत ही लाभकी बात है। आप उसको गहरे उतरकर समझें, इतनी प्रार्थना है।

हमें अनुकूल व्यक्ति, पदार्थ, परिस्थिति आदि मिलें और प्रतिकूल व्यक्ति, पदार्थ, परिस्थिति आदि न मिलें—यही संसार है। अनुकूलता-प्रतिकूलताके सिवाय संसार कुछ नहीं है। उस अनुकूलता-प्रतिकूलताका हमारेपर जो असर पड़ता है, उसका नाम ही विकार है। इन विकारोंसे हमें छूटना है; क्योंकि जबतक विकार होते रहेंगे, तबतक शान्ति नहीं मिलेगी।

इस बातकी खोज करो कि विकार कहाँ होते हैं? विकार मन और बुद्धिमें होते हैं, अन्तःकरणमें होते हैं। अतः विकार करणमें होते हैं कर्तामें नहीं होते—यह खास समझनेकी बात है। आपको अनुकूलता मिली तो आप सुखी हो गये, प्रतिकूलता मिली तो आप दुःखी हो गये। सुखी और दुःखी होना—ये दो अवस्थाएँ हुईं। इन दोनों अवस्थाओंमें आप दो हुए या एक ही रहे? इस बातपर विचार करें। सुखकी अवस्थामें आप वे ही रहे और दुःखकी अवस्थामें भी आप वे ही रहे—यह बात सच्ची है न? वास्तवमें ये अवस्थाएँ मन-बुद्धिमें होती हैं, पर इनको आप अपनेमें मान लेते हो—यह गलती होती है। आप सुख-दुःखकी अवस्थाओंमें अपनेको सुखी-दुःखी मान लेते हो। सुख-दुःखका असर अन्तःकरणपर पड़ जाता है तो आप सुखी-दुःखी हो जाते हो। विकारोंको आप अपनेमें मान लेते हो। वास्तवमें विकार आपमें हुए ही नहीं, विकार तो अन्तःकरणमें हुए।

सुख और दुःख—इन दोनोंको आप जानते हो। दोनोंको वही जान सकता है, जो दोनोंसे अलग हो। जो दोनोंमें तदाकार हो जायगा, वह सदा सुखी ही रहेगा अथवा सदा दुःखी ही रहेगा। जो सुखमें भी रहता है और दुःखमें भी रहता है, वही सुख और दुःख—इन दोनोंको जान सकता है। सुख अलग है और दुःख अलग है। इनसे अलग रहनेवाला इन दोनोंको जानता है। अगर वह इनके साथ मिला हुआ हो तो सुख और दुःख—दोनोंको नहीं जानेगा, प्रत्युत एकको ही जानेगा, जिसके साथ वह रहा है।

दूसरी बात, सुखी होते समय भी आप वे ही हो और दुःखी होते समय भी आप वे ही हो, तभी तो आपको दोनोंका अलग-अलग अनुभव होता है। सुख और दुःख—दोनोंका अलग-अलग अनुभव करनेवाला सुख-दुःखसे अलग है। सुख-दुःखसे अलगका अनुभव कब होगा? जब आप प्रकृतिमें स्थित न होकर 'स्व' में स्थित हो जाओगे—'**समदुःखसुखः स्वस्थः**' (गीता १४।२४)। प्रकृति विकारी है। उसमें आप स्थित होंगे तो विकार होगा ही। परन्तु वह विकार आपमें (स्वयंमें) कभी नहीं होगा। अज्ञान-अवस्थामें भी आपमें विकार नहीं हुआ और ज्ञान-अवस्थामें भी आपमें विकार नहीं हुआ। आपके स्वरूपमें कभी विकार हुआ ही नहीं, हो सकता ही नहीं। यदि आपमें विकार होते तो वे कभी मिटते ही नहीं। विकार प्रकृतिमें होते हैं। प्रकृतिसे अपनेको अलग अनुभव करना ही तत्त्वज्ञानको, जीवन्मुक्तिको प्राप्त करना है।

वास्तवमें आप प्रकृतिसे अलग हैं। इस बातको जाननेके लिये आप कृपा करें, थोड़ा ध्यान दें। आप आने-जानेवाले नहीं हैं। भगवान्‌ने कहा है—

**मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।**
**आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥**

(गीता २।१४)

'हे कुन्तीनन्दन! इन्द्रियोंके वे विषय हैं जो अनुकूलता और प्रतिकूलताके द्वारा सुख और दुःख देनेवाले हैं। वे आने-जानेवाले और अनित्य हैं। हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! उनको तुम सहन करो।'

अनुकूलता अच्छी लगती है और प्रतिकूलता बुरी लगती है। ये दोनों ही आने-जानेवाली और अनित्य हैं। इनको आप सह लो। सुख आये, उसको भी सह लो और दुःख आये, उसको भी सह लो। सुखमें सुखी हो गये और दुःखमें दुःखी हो गये तो यह आपसे सहा नहीं गया। यह आपसे गलती हुई। आप आने-जानेवाले और अनित्य नहीं हो। आप नित्य हो और विकार अनित्य हैं। जब आप अनित्यके साथ मिलते हो, तब आप अपनेमें विकार मानते हो। आने-जानेवालेके साथ रहनेवाला मिल जाता है—यहीं गलती होती है। यदि आप 'स्व' में स्थित हो जायँगे तो आपको अनुकूलता और प्रतिकूलताका ज्ञान तो होगा, पर उसका आपपर असर नहीं पड़ेगा। इसीका नाम मुक्ति है। विकारोंसे छूटना ही मुक्ति है। मुक्ति नित्य है, इसलिये मुक्तिके बाद फिर बन्धन नहीं होता—'**यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव**' (गीता ४। ३५), फिर मोह नहीं होता। कारण कि वास्तवमें आपके भीतर मोह नहीं है। केवल अपने स्वरूपका अनुभव करना है। इस विषयमें आपसे बात करनेकी जितनी मेरी लगन है, उतनी आपकी लगन नहीं है।

सुख और दुःख तो आने-जानेवाले हैं और वे पहुँचते हैं मन-बुद्धितक, ज्यादा-से-ज्यादा 'अहम्' तक। 'अहम्' एकदेशीय है; क्योंकि वह प्रकाशित होता है। जैसे यह चीज दीखती है, ऐसे ही 'अहम्' दीखता है। 'अहम्' आँखोंसे नहीं दीखता, पर भीतरमें 'अहम्' अर्थात् 'मैं' का अनुभव होता है। सब विकार इस 'मैं' तक ही पहुँचते हैं। जिस प्रकाशमें यह 'मैं' दीखता है, उस प्रकाशमें कोई विकार नहीं है। जिसमें विकार होते हैं, उसको भी आप जानते हैं और विकारोंको भी आप जानते हैं। उस जाननेपनमें विकार हैं क्या? आप 'अहम्' के

साथ मत मिलो। 'अहम्' के साथ मिलना प्रकृतिमें स्थित होना है। यह 'अपरा' प्रकृति है और आप जीवरूपा 'परा' प्रकृति हो। परा प्रकृतिने जगत्को धारण कर लिया—'**ययेदं धार्यते जगत्**' (गीता ७। ५)। जगत्को धारण करनेसे यह विकारोंमें फँस गया। शरीर मैं हूँ, शरीर मेरा है; मन मैं हूँ, मन मेरा है; बुद्धि मैं हूँ, बुद्धि मेरी है; अहम् मैं हूँ, अहम् मेरा है—यह जो मानना है, यही जगत्को धारण करना है।

जीव अंश तो भगवान्का है, पर वह भगवान्में स्थित न होकर प्रकृतिमें स्थित हो जाता है (गीता १५। ७)। अपरा प्रकृति बड़ी सपूत है, वह बेचारी अपनेमें ही स्थित रहती है, आपमें स्थित होती ही नहीं। आप स्वतन्त्र हो, चेतन हो। चेतन होनेसे आप अपने स्वरूपमें ही रहते हो और प्रकृतिमें भी स्थित हो जाते हो। भगवान्ने कितना सुन्दर पद दिया है—'**मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि**'! ये शरीर, इन्द्रियाँ आदि प्रकृतिमें ही स्थित रहते हैं, कभी प्रकृतिको छोड़कर आपमें आते ही नहीं। वास्तवमें आप प्रकृतिमें स्थित नहीं हो, प्रत्युत भगवान्के अंश होनेसे भगवान्में स्थित हो। 'अहम्' तो प्रकृति है। प्रकृतिको धारण करो अथवा न करो—इसमें आप स्वतन्त्र हो। इसमें आप पराधीन नहीं हो। जिस ज्ञानके अन्तर्गत 'अहम्' दीखता है, उस ज्ञानमें 'अहम्' नहीं है। आप उस ज्ञानमें स्थित रहो। उसमें आपकी स्थिति स्वतः है।

अपना जो स्वरूप है, उस प्रकाशमें 'अहम्' दीखता है। अगर वह नहीं दीखता, तो 'अहम्' है—इसमें क्या गवाह है? आप खुद अपरा प्रकृतिको पकड़ते हो। आप जिसको पकड़ते हो, अधिकार देते हो, वही आपपर अधिकार करता है। आप अधिकार नहीं दो तो उसमें आपपर अधिकार जमानेकी ताकत नहीं है। आने-जानेवाला आपपर अधिकार कैसे जमायेगा? उसको आप 'मैं' और 'मेरा' मान लेते हो, तब आफत आती है।

सुख-दुःख दीखते हैं। विकार दीखते हैं। जैसे सब वस्तुएँ एक

प्रकाशमें दीखती हैं, ऐसे ही 'अहम्' एक प्रकाशमें दीखता है। प्रकाश न हो तो 'अहम्' दीखे ही नहीं। 'अहम्' को आप पकड़ते हो तो किसी गवाहसे नहीं, प्रत्युत स्वतन्त्रतासे पकड़ते हो। कोई आपको मदद करके पकड़ानेवाला है ही नहीं। 'अहम्' को आपने माना है तो आप 'अहम्' को न मानें। सन्तोंने कहा है—***'देखो निरपख होय तमाशा'*** निरपेक्ष होकर तमाशा देखो। जो प्रकाश अपना स्वरूप है, उसमें 'अहम्' को धारण मत करो।

गाढ़ नींदमें 'अहम्' का भान नहीं होता। जागनेपर कहते हो कि 'नींदमें मेरेको कुछ पता नहीं था'; अतः वहाँ 'अहम्' नहीं था, पर आप तो थे ही। गाढ़ नींदमें 'मैं अभी सोया हुआ हूँ'—ऐसा आपको अनुभव नहीं होता। जागनेपर ही आप कहते हो कि मैं ऐसा सोया, मेरेको कुछ पता नहीं था। 'कुछ पता नहीं था'—यह स्मृति है। स्मृति अनुभवजन्य होती है—**'अनुभूतविषया सम्प्रमोषः स्मृतिः'** (योगदर्शन १। ११)। आपको स्मृति आती है कि मैं गहरी नींदमें सोया। गहरी नींदमें 'अहम्' (मैं) लीन था, पर आप लीन नहीं हुए थे। अगर आप लीन हो जाते तो 'मेरेको गाढ़ नींद आयी, मेरेको कुछ पता नहीं था'—यह नहीं कह सकते थे।

❑❑

# राग-द्वेषका त्याग

प्रकृति और पुरुष—ये दो हैं। इन दोनोंके अंशसे बना हुआ यह जीवात्मा है। अब इसका मुख जबतक प्रकृतिकी तरफ रहेगा, तबतक इसको शान्ति नहीं मिल सकती; और यह परमात्माके सम्मुख हो जायगा तो अशान्ति टिकेगी नहीं—यह पक्की बात है।

संयोग-वियोग प्रकृतिकी चीज है। हमें जो कुछ मिला है, वह सब प्रकृतिका है, उत्पन्न होकर होनेवाला है। परन्तु परमात्मा आने-जानेवाले, मिलने-बिछुड़नेवाले नहीं हैं। परमात्मा सदा मिले हुए रहते हैं; किन्तु प्रकृति कभी मिली हुई नहीं रहती। आपको यह बात अलौकिक लगेगी कि संसार आजतक किसीको भी नहीं मिला है और परमात्मा कभी भी वियुक्त नहीं हुए हैं। संसार मेरे साथ है, शरीर मेरे साथ है, इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि मेरे साथ हैं और परमात्मा न जाने कहाँ हैं, पता नहीं—यह विस्मृति है, मूर्खता है।

जो कभी हों और कभी न हों, कहीं हों और कहीं न हों, किसीके हों और किसीके न हों, वे परमात्मा हो ही नहीं सकते। सर्वसमर्थ परमात्मामें यह सामर्थ्य नहीं है कि वे किसी समयमें हों और किसी समयमें न हों, किसी देशमें हों और किसी देशमें न हों, किसी वेशमें हों और किसी वेशमें न हों, किसी सम्प्रदायके हों और किसी सम्प्रदायके न हों, किसी व्यक्तिके हों और किसी व्यक्तिके न हों, किसी वर्ण-आश्रमके हों और किसी वर्ण-आश्रमके न हों। भगवान् तो प्राणिमात्रमें समान रहते हैं—

**मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।**

(गीता ९। ४)

**समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।**

(गीता ९। २९)

आपके देखने-सुननेमें जितना जगत् आता है, उस सबमें वे परमात्मा परिपूर्ण हैं—

**भूमा अचल शाश्वत अमल सम ठोस है तू सर्वदा।**
**यह देह है पोला घड़ा बनता बिगड़ता है सदा॥**

परमात्मा व्यापक हैं, अचल हैं, ठोस हैं, सर्वत्र ठसाठस भरे हुए हैं; परन्तु यह शरीर बिलकुल पोला है, इसमें कोरी पोल-ही-पोल है! वहम होता है कि इतना मान मिल गया, इतना आदर मिल गया, इतना भोग मिल गया, इतना सुख मिल गया! वास्तवमें मिला कुछ नहीं है। केवल वहम है, धोखा-है-धोखा! कुछ नहीं रहेगा। क्या यह शरीर रहनेवाला है? अनुकूलता रहनेवाली है? सुख रहनेवाला है? मान रहनेवाला है? बड़ाई रहनेवाली है? इनमें कोई रहनेवाली चीज है क्या? संसार नाम ही बहनेवालेका है। जो निरन्तर बहता रहे, उसका नाम 'संसार' है। यह हरदम बदलता ही रहता है—'**गच्छतीति जगत्**'। कभी एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता। परन्तु परमात्मा एक क्षण भी कहीं जाते नहीं; जायँ कहाँ? कोई खाली जगह हो तो जायँ! जहाँ जायँ, वहाँ पहलेसे ही परमात्मा भरे हुए हैं।

भगवान् सबके हैं और सबमें हैं, पर मनुष्य उनसे विमुख हो गया है। संसार रात-दिन नष्ट होता जा रहा है, फिर भी वह उसको अपना मानता है और समझता है कि मेरेको संसार मिल गया। भगवान् कभी बिछुड़ते हैं ही नहीं, पर उनके लिये कहता है कि वे हैं ही नहीं, मिलते हैं ही नहीं; भगवान्‌से मिलना तो बहुत कठिन है, पर भगवान् तो सदा मिले हुए ही रहते हैं। भाई! आप अपनी दृष्टि उधर डालते ही नहीं, उधर देखते ही नहीं। जहाँ-जहाँ आप देखते हो, वहाँ-वहाँ भगवान् मौजूद हैं। अगर यह बात स्वीकार कर लो, मान लो कि सब देशमें, सब कालमें, सब वस्तुओंमें, सम्पूर्ण घटनाओंमें, सम्पूर्ण परिस्थितियोंमें, सम्पूर्ण क्रियाओंमें भगवान्

हैं, तो भगवान् दीखने लग जायँगे। दृढ़तासे मानोगे तो दीखेंगे, संदेह होगा तो नहीं दीखेंगे। जितना मानोगे, उतना लाभ जरूर होगा। दृढ़तासे मान लो तो छिप ही नहीं सकते भगवान्! क्योंकि—

**यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।**
**तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥**

(गीता ६। ३०)

'जो सबमें मेरेको देखता है और सबको मेरे अन्तर्गत देखता है, मैं उसके लिये अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।'

जहाँ देखें, जब देखें, जिस देशमें देखें, वहीं भगवान् हैं। परन्तु जहाँ राग-द्वेष होंगे, वहाँ भगवान् नहीं दीखेंगे। भगवान्‌के दीखनेमें राग-द्वेष ही बाधक हैं। जहाँ अनुकूलता मान लेंगे, वहाँ राग हो जायगा और जहाँ प्रतिकूलता मान लेंगे, वहाँ द्वेष हो जायगा। एक आदमीकी दो बेटियाँ थीं। दोनों बेटियाँ पास-पास गाँवमें ब्याही गयी थीं। एक बेटीवालोंका खेतीका काम था और एकका कुम्हारका काम था। वह आदमी उस बेटीके यहाँ गया, जो खेतीका काम करती थी और उससे पूछा कि क्या ढंग है बेटी? उसने कहा— पिताजी! अगर पाँच-सात दिनोंमें वर्षा नहीं हुई तो खेती सूख जायगी, कुछ नहीं होगा। अब वह दूसरी बेटीके यहाँ गया और उससे पूछा कि क्या ढंग है? तो वह बोली —पिताजी! अगर पाँच-सात दिनोंमें वर्षा आ गयी तो कुछ नहीं होगा; क्योंकि मिट्टीके घड़े धूपमें रखे हैं और कच्चे घड़ोंपर यदि वर्षा हो जायगी तो सब मिट्टी हो जायगी! अब आपलोग बतायें कि भगवान् वर्षा करें या न करें! दोनों एक आदमीकी बेटियाँ हैं। माता-पिता सदा बेटीका भला चाहते हैं। अब करें क्या? एकने वर्षा होना अनुकूल मान लिया और एकने वर्षा होना प्रतिकूल मान लिया। एकने वर्षा न होना अनुकूल मान लिया और एकने वर्षा न होना प्रतिकूल मान

लिया। उन्होंने वर्षा होनेको ठीक-बेठीक मान लिया। परन्तु वर्षा न ठीक है न बेठीक है। वर्षा होनेवाली होगी तो होगी ही। अगर कोई वर्षा होनेको ठीक मानता है तो उसका वर्षामें 'राग' हो गया और वर्षा होनेको ठीक नहीं मानता तो उसका वर्षामें 'द्वेष' हो गया। ऐसे ही यह संसार तो एक-सा है, पर इसमें ठीक और बेठीक—ये दो मान्यताएँ कर लीं तो फँस गये! यह ठीक हुआ, यह बेठीक हुआ। नफा हुआ, नुकसान हुआ। राजी हुए, नाराज हुए। यह वैरी है, यह मित्र है। इसने मान कर दिया, इसने अपमान कर दिया। इसने निन्दा कर दी, इसने प्रशंसा कर दी। इसने आराम, सुख दिया, इसने दुःख दिया। अब इनको देखते रहोगे तो भगवान् नहीं मिलेंगे। अतः राग-द्वेषके वशीभूत न हों, राजी-नाराज न हों—'**तयोर्न वशमागच्छेत्**' (गीता ३।३४)। राजी-नाराज न होनेवालेको भगवान्‌ने त्यागी बताया है—'**ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति**' (गीता ५।३)। जो राग-द्वेष नहीं करता, उसको भगवान्‌ने अपना प्यारा भक्त बताया है (गीता १२।१७)। संसारमें अच्छा और मन्दा तो होता ही रहता है। अतः साधकके लिये इसमें क्या ठीक और क्या बेठीक '**किं भद्रं किमभद्रं वा**' (श्रीमद्भा० ११।२८।४)।

यह संसार तो एक तमाशा है, खेल है। सिनेमाके परदेपर कभी लड़ाई दीख जाती है, कभी शान्ति दीख जाती है। कभी दीखता है कि आग लग गयी, हाहाकार मच गया, गाँव-के-गाँव जल गये, पर परदेको देखो तो वह गरम ही नहीं हुआ! कभी दीखता है कि वर्षा आ गयी, नदीमें जोरसे बाढ़ आ गयी, बड़े-बड़े पत्थर बह गये, पशु-पक्षी बह गये, पर परदेको देखो तो वह गीला ही नहीं हुआ! परन्तु दर्शककी दृष्टि तमाशेकी तरफ ही रहती है, परदेकी तरफ नहीं। इसी तरह यह संसार भी मायाका एक परदा है। जैसे सिनेमा अँधेरेमें ही दीखता है, ऐसे ही माया अज्ञानरूपी अँधेरेमें ही दीखती

है। यदि पूरे सिनेमा हालमें बत्तियाँ जला दी जायँ तो तमाशा दीखना बन्द हो जायगा। इसी तरह **'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७।१९) 'सब कुछ वासुदेव ही है'—ऐसा प्रकाश हो जाय तो यह तमाशा रहेगा ही नहीं। मशीन तो भगवान् हैं और उसमें मायारूपी फिल्म लगी है। परदेकी जगह यह संसार है। प्रकाश परमात्माका है। अब इस मायाको सच्चा समझकर राजी-नाराज हो गये तो फँस गये! अतः सन्तोंने कहा है—***'देखो निरपख होय तमाशा'।***

ठहरनेवाला कोई नहीं है। न अच्छा ठहरनेवाला है, न बुरा ठहरनेवाला है। अपनी उम्रमें कोई वस्तु टिकी है क्या? अवस्था टिकी है क्या? घटना टिकी है क्या? कोई चीज स्थायी रही है क्या? पर आप तो वे-के-वे ही हैं। आपके सामने कितना परिवर्तन हुआ! हमारे देखते-देखते भी कितना परिवर्तन हो गया! इस शहरके मकान, सड़क, रिवाज आदि सब बदल गये। परन्तु संसारमें परमात्मा और शरीरमें आत्मा—ये दोनों नहीं बदले। शरीर संसारका साथी है और आत्मा परमात्माका साथी है। इसमें कोई कहे कि शरीर मेरा है, तो फँस गया! जब शरीर संसारका साथी है तो फिर आप एक शरीरको ही अपना क्यों मानते हो? मानो तो सब शरीरोंको अपना मानो, नहीं तो इस शरीरको भी अपना मत मानो। जैसे दूसरे शरीरोंकी बेपरवाह करते हो, ऐसे ही इस शरीरकी भी बेपरवाह करो अथवा जैसे इस शरीरकी परवाह करते हो, ऐसे ही जो सामने आये, उसकी भी परवाह करो। जैसे इस शरीरकी पीड़ा नहीं सही जाती, ऐसे ही दूसरे शरीरोंकी पीड़ा भी न सही जाय तो काम ठीक बैठ जायगा।

यह बात अच्छी है और यह बुरी है—यह राग और द्वेष है। जहाँ मन खिंचता है, वहाँ राग है और जहाँ मन फेंकता है, वहाँ द्वेष है। ये राग-द्वेष ही पारमार्थिक मार्गमें लुटेरे हैं—**'तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ'** (गीता ३।३४)। ये आपकी साधन-सम्पत्ति लूट

लेंगे, आपको आगे नहीं बढ़ने देंगे। अतः क्या अच्छा और क्या मन्दा? क्या सुख और क्या दुःख? मनस्वी पुरुष सुख-दुःखको नहीं देखते—'**मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्**' (नीतिशतक ८२)। वे तो उसको देखते हैं, जो सुख-दुःखसे अतीत है, जहाँ आनन्द-ही-आनन्द है, मौज-ही-मौज है, मस्ती-ही-मस्ती है! जिसके समान कोई आनन्द हुआ नहीं, हो सकता नहीं, सम्भव ही नहीं, वह आनन्द मनुष्यके सामने है। देवता, पशु, पक्षी, वृक्ष, राक्षस, असुर, भूत-प्रेत, पिशाच एवं नरकके जीवोंके सामने वह आनन्द नहीं है। मनुष्य ही उस आनन्दका अधिकारी है। मनुष्य उस आनन्दको प्राप्त कर सकता है। परन्तु राग-द्वेष करोगे तो वह आनन्द मिलेगा नहीं। अतः आप राग-द्वेषके वशीभूत न हों—

**नहीं किसीसे दोस्ती, नहीं किसीसे बैर।**
**नहीं किसीके सिरधणी, नहीं किसीकी बैर॥**

भाइयो! बहनो! आप थोड़ा ध्यान दें। सुखमें भी आप वही रहते हैं और दुःखमें भी आप वही रहते हैं। यदि आप वही नहीं रहते तो सुख और दुःख—इन दोनोंको अलग-अलग कौन जानता? बहुत सीधी बात है। हमने भी पहले पढ़ा-सुना, साधारण दृष्टिसे देखा तो सुख-दुःखमें समान रहनेमें कठिनता मालूम दी। परन्तु विचारसे देखा कि सुख-दुःख तो आने-जानेवाले हैं—'**आगमापायिनः**' (गीता २। १४) और आप हो रहनेवाले। हम यहाँ दरवाजेपर खड़े हो जायँ और इधरसे मोटरें दनादन आयें तो हम नाचने लगें कि मौज हो गयी, आज तो बहुत मोटरें आयीं! दूसरे दिन एक भी मोटर नहीं आयी तो लगे रोने। रोते क्यों हो? कि आज एक भी मोटर नहीं आयी! तो धूल कम उड़ी, हर्ज क्या हुआ? मोटर आये या न आये, तुम्हें इससे क्या मतलब? ऐसे ही आपके सामने कई अनुकूलताएँ-प्रतिकूलताएँ आयीं, आपका आदर-निरादर हुआ, निन्दा-प्रशंसा हुई, वाह-वाह हुई, पर आप वही रहे कि नहीं? सुख आया

तो आप वही रहे, दुःख आया तो आप वही रहे। अतः आप एक ही हो—'**समदुःखसुखः स्वस्थः**' (गीता १४। २४)। आप अपनेमें ही रहो, सुख-दुःखसे मिलो मत, फिर मौज-ही-मौज है! '***सदा दिवाली सन्तकी आठों पहर आनन्द।***' अच्छा और बुरा लगता है, ठीक और बेठीक लगता है—यह राग-द्वेष है। इसके वशमें न होना क्या है? इसको तमाशेकी तरह देखे कि क्या अच्छा है और क्या मन्दा है! न सुख रहनेवाला है, न दुःख रहनेवाला है। न बीमारी रहनेवाली है, न स्वस्थता रहनेवाली है। कुछ भी रहनेवाला नहीं है। इन सबका वियोग होनेवाला है। बहुत दिनोंतक संयोग रहनेपर भी एक दिन वियोग जरूर होगा—'**अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वाऽपि विषयाः**'। अतः सज्जनो! इस बातको पहलेसे ही समझ लो कि एक दिन इन सबका वियोग होगा। लड़का जन्मे, तभी यह समझ लेना चाहिये कि यह मरेगा जरूर! यह बड़ा होगा कि नहीं होगा, पढ़ेगा कि नहीं पढ़ेगा, इसका विवाह होगा कि नहीं होगा, इसके लड़का-लड़की होंगे कि नहीं होंगे—इसमें सन्देह है; परन्तु यह मरेगा कि नहीं मरेगा—इसमें कोई सन्देह है क्या? जन्म हुआ है तो खास काम मरना ही है, और कोई खास काम नहीं है। अब इसमें राजी और नाराज क्या हों। अपने तो मौजसे भगवान्‌की तरफ चलते रहें। जो वैराग्यवान् होते हैं, विवेकी होते हैं, भगवान्‌के प्रेमी भक्त होते हैं, वे इन आने-जानेवाले पदार्थोंकी तरफ दृष्टि रखते ही नहीं। वे करनेमें सावधान और होनेमें सदा प्रसन्न रहते हैं।

**रज्जब रोवे कौन को, हँसे सो कौन विचार।**
**गये सो आवन के नहीं रहे सो जावनहार॥**

सब जानेवाला है, मरनेवाला है तो क्या हँसें! जो मर चुके, उनको कितना ही रोयें, वे आनेके हैं नहीं तो क्या रोयें! यह विचार स्थायी कर लो। फिर राग-द्वेष मिट जायँगे।

राग-द्वेषको सह लो अर्थात् प्रियकी प्राप्ति होनेपर हर्षित न हों और अप्रियकी प्राप्ति होनेपर उद्विग्न न हों। फिर आप जन्म-मरणसे रहित हो जाओगे। सन्तोंने कहा है—*'अब हम अमर भये न मरेंगे'*। अब क्यों मरेंगे? मरनेवाले तो ये राग-द्वेष ही हैं। इन दोनोंको नाशवान् और पतन करनेवाले समझो। चाहे तो ऐसा समझकर इनसे अलग हो जाओ, नहीं तो भगवान्‌को पुकारो कि 'हे नाथ! हे नाथ!! रक्षा करो!' जैसे, मोटर खराब हो जाय तो खुद ठीक कर लो। खुद ठीक न कर सको तो कारखानेमें भेज दो! ऐसे ही राग-द्वेषसे अलग न हो सको तो भगवान्‌की शरणमें चले जाओ। भगवान्‌ने गीताके अन्तमें कहा कि 'तू मेरी शरणमें आ जा' **'मामेकं शरणं व्रज'** (गीता १८। ६६)।

एक ब्राह्मण देवताकी कन्या बड़ी हो गयी। उसने एक धर्मात्मा सेठके पास जाकर कहा—'सेठजी! कन्या बड़ी हो गयी, क्या करूँ?' सेठने कहा—'आप वर ढूँढ़ो, तैयारी करो, चिन्ता क्यों करते हो?' इसका अर्थ यह नहीं है कि सेठ ही आकर वर ढूँढ़ेंगे, विवाह करायेंगे, प्रत्युत इसका अर्थ है कि चिन्ता मत करो; धन हम दे देंगे, काम तुम करो। इसी तरह भगवान् कहते हैं कि 'तुम अपना काम करो, चिन्ता मत करो। तुम्हें जो अभाव होगा, उसे मैं पूरा करूँगा।' भगवान्‌ने आपको जो काम दिया है, उसको ठीक तरहसे करो। अर्जुनने भी यही कहा—**'करिष्ये वचनं तव'** (गीता १८। ७३) 'अब मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।' भगवान्‌का काम है, भगवान्‌का ही घर है, भगवान्‌का ही सब द्रव्य है, भगवान्‌का ही सब परिवार है! अतः भगवान्‌का काम उत्साहसे करो, अच्छी तरहसे करो। होनेकी चिन्ता मत करो; क्योंकि होना आपके अधीन है ही नहीं। आलस्य-प्रमाद मत करो। निरर्थक समय बरबाद मत करो। उत्तम-से-उत्तम बर्ताव करो। क्या होगा, क्या नहीं होगा—इसको भगवान्‌पर छोड़ दो कि तू जाने, तेरा काम जाने।

जो भाई-बहन जहाँ हैं, वहीं सुचारुरूपसे, मर्यादासे, उत्साहसे अपने कर्तव्यका पालन करें और चिन्ता न करें।

**चिन्ता दीनदयालको, मो मन सदा आनन्द।**
**जायो सो प्रतिपालसी, रामदास गोबिन्द॥**

चिन्ता हम क्यों करें! जो मालिक है, वह चिन्ता करे। हम तो अपनी जिम्मेवारीका काम ठीक तरहसे करेंगे। अच्छा-मन्दा मानना हमारा काम नहीं है।

जो पदार्थ, सामग्री मिली है, उसके द्वारा उदारतापूर्वक सबकी सेवा करो, हित करो। संसारकी चीजोंको अपनी मत मानो। कोई भूखा आ जाय तो उसको भोजन दे दो। नंगा आ जाय तो उसको कपड़ा दे दो। वह कहे कि 'सब मेरेको दे दो' तो उससे कह दो कि 'सब तेरेको कैसे दे दें? मैं भी निर्वाह करता हूँ, तू भी निर्वाह कर ले भाई! न धन तू साथमें लाया है, न मैं लाया हूँ।' रामजीने भेजा है तो सबका उपकार करना है। नहीं भेजा है तो जय रामजीकी! अपने क्या हर्ज है! ये जो चमगादड़ होते हैं न, जो वृक्षोंपर लटके रहते हैं, उनके यहाँ कोई मेहमान आ जाय तो वे उसका क्या आदर करते हैं? कि हम भी लटकते हैं, आप भी लटको! ऋषिकेशमें सत्संग करते थे। वहाँ कोई सन्त आता तो कहते कि पधारो महाराज! विराजो। हम भी भिक्षा माँगकर खाते हैं, आप भी भिक्षा माँगो और खाओ!

राग-द्वेष न करें। जो मिले, उसमें सन्तुष्ट रहें—***'जथा लाभ संतोष सदाई'*** (मानस ७। ४६। १)। भगवान् जो सुख-दुःख भेजें, उसमें ही राजी रहें। जो मालिकके कहनेमें चलता है, मालिक उसके वशमें हो जाता है। ठाकुरजी जो परिस्थिति भेजें, उसीमें राजी रहें तो ठाकुरजी वशमें हो जायँगे! थोड़ी-सी सावधानी रखें कि जो बदलता रहता है, उसमें क्या राजी और क्या नाराज हों! **'पुनः प्रभातं पुनरेव शर्वरी पुनः शशांकः पुनरुद्यतो रविः'**। कभी

सबेरा होता है, कभी साँझ होती है; कभी रात होती है, कभी दिन होता है—यह तो होता ही रहता है, बदलता ही रहता है। संसारके पदार्थ आते-जाते रहते हैं। परन्तु आप और भगवान् वे-के-वे ही रहते हैं। आपका और भगवान्‌का साथ है। शरीरका और संसारका साथ है। आप अपने स्वरूपमें स्थित रहोगे तो जीत जाओगे और भगवान्‌पर दृष्टि रखोगे तो जीत जाओगे। परन्तु शरीर और संसारपर दृष्टि रखोगे तो हार जाओगे। जिनका मन समतामें स्थित हो गया, वे संसारको जीत गये—'**इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः**' (गीता ५।१९)। आप अपने स्वरूपमें स्थित हो जाओ तो समता आ जायगी और भगवान्‌की शरण ले लो तो समता आ जायगी।

जो सामग्री मिली है, उसके द्वारा दूसरोंको सुख पहुँचाओ। सामग्री नहीं मिली तो मौज करो, आनन्द करो! भगवान्‌ने जो दिया है, उसमें सन्तोष करो। 'भगवान् जो करते हैं, ठीक करते हैं।' उसमें गलती नहीं होती। इसलिये क्या दुःखी और क्या सुखी हों! हमें तो भगवान्‌को याद रखना है, उनका नाम लेना है, बस। आज दिनतक आप देखते आये हैं कि संसार हरदम बदलता रहता है तो अब नयी बात क्या हो गयी, बताओ? थोड़ा-सा अपने अनुभवका आदर करो तो निहाल हो जाओगे। गीताकी एक टीका है—'**परमार्थप्रपा**'। उसमें लिखा है कि मनुष्य अपने जीवनका खयाल करे तो संसारसे स्वतः वैराग्य हो जाय। आपने अपने जीवनमें कितनी ऊँची-नीची बातें देखी हैं, ठीक-बेठीक देखा है! वही अब भी देख लो। यह तो ऐसे ही होता रहेगा। यह सब तो आने-जानेवाला है और हम रहनेवाले हैं। अब क्या राजी हों और क्या नाराज हों।

पहाड़ दूरसे ही अच्छा दीखता है, नजदीकसे देखो तो कोरा पत्थर-ही-पत्थर है! ऐसे ही संसारको आप नजदीकसे देखोगे, तब इसकी असलियतका पता लगेगा कि यहाँ रहनेवाला कुछ भी नहीं

है। आपके यहाँ लड़का भी जन्मता है और लड़की भी जन्मती है। लड़केके जन्मपर तो आप राजी होते हैं और लड़कीके जन्मपर नाराज होते हैं। ठाकुरजीने लड़का दिया है तो उसका भी पालन करो और लड़की दी है तो उसका भी पालन करो। भगवान्‌ने कन्या दी है तो अच्छी तरहसे कन्यादान करेंगे, विवाह करेंगे, जिससे किसीका वंश बढ़ेगा—ऐसे उत्साहसे उसका पालन करो। परन्तु आप लड़केके जन्मपर राजी और लड़कीके जन्मपर बेराजी होते हैं। सासूजीसे पूछो कि माँजी, क्या हुआ है? वह कहेगी कि 'भाटो (पत्थर) आयो है भाटो'! उन माँजीसे पूछो कि जब आप जन्मी थीं, तब हीरा आया था क्या? लड़कीको पराया धन कहते हैं। लड़का-लड़की आपसमें लड़ें तो लड़केसे कहते हैं कि बहनसे क्यों लड़ता है? यह तो अपने घर चली जायगी! इसी प्रकार सज्जनो! प्रकृतिका जितना कार्य (संसार) है, वह सब लड़की है और लड़की तो अपने घर जायगी ही, यहाँ रहेगी नहीं। अतः क्यों मोह करते हो? यहाँ कुछ भी नहीं रहेगा। न सम्पत्ति रहेगी, न विपत्ति रहेगी। न अनुकूलता रहेगी, न प्रतिकूलता रहेगी। फिर इसमें क्यों राग और द्वेष करें?

❑❑

# सत्संगकी आवश्यकता

प्रत्येक मनुष्यको शास्त्रके विधानके अनुसार कार्य करना चाहिये। भगवान्, सन्त-महात्मा और शास्त्र—ये तीनों निष्पक्ष हैं, समतावाले हैं, प्राणिमात्रके सुहृद् हैं और सबका हित चाहते हैं; अत: इनकी बात कभी टालनी नहीं चाहिये। ये हमारेसे कुछ भी नहीं चाहते, प्रत्युत केवल हमारा हित करते हैं। गोस्वामीजी कहते हैं—

**हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥**
**स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥**

(मानस ७। ४७। ३)

एक भगवान् और एक भगवान्‌के भक्त—ये दोनों नि:स्वार्थभावसे सबका हित करनेवाले हैं। भगवान्‌में तो यह बात स्वाभाविक है और वही स्वभाव भक्तोंमें भी उतर आता है। अत: हमें इनकी बात माननी चाहिये।

स्त्रियोंके लिये पति ही गुरु माना गया है; अत: उनको स्वतन्त्र गुरु बनानेकी जरूरत नहीं है। गुरुके विषयमें आया है कि यदि गुरु अभिमानी है, अहंकार रखता है, शरीरको बड़ा मानता है, कर्तव्य-अकर्तव्यका विवेक नहीं रखता, खराब रास्ते चल पड़ा है तो ऐसे गुरुका परित्याग कर देना चाहिये—'**परित्यागो विधीयते**'। अगर वह भजन-स्मरण, सत्संग करनेमें, भगवान्‌के सम्मुख होनेमें बाधा देता हो तो उसकी बात नहीं माननी चाहिये। कारण कि वह तो इस जन्मका गुरु है, पर आध्यात्मिक उन्नति सदाकी उन्नति है। गुरु, पति, माता-पिता आदि तो इस जन्मके हैं, पर भगवान् हैं, तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त महापुरुष हैं, धर्म है—ये सब नित्य हैं। इसमें एक मार्मिक बात बताता हूँ, आप ध्यान दें।

पति आदि बड़ोंका कहना कहाँ नहीं मानना चाहिये कि जहाँ

उनका अहित होता हो। जिससे पति, माँ–बाप आदिका अहित होता हो, उस आज्ञा-पालनसे क्या लाभ? जैसे, पति सत्संग जानेमें रुकावट देता है, जाने नहीं देता तो उसकी बात नहीं माननी चाहिये। जिस भाई या बहनकी सत्संगमें जानेकी जोरदार इच्छा है, जो केवल पारमार्थिक लाभके लिये ही सत्संगमें जाना चाहता है, जिसके भाव और आचरण बहुत ठीक शुद्ध हैं, उसको यदि गुरुजन सत्संगमें जानेके लिये मना करते हैं और वह सत्संगमें नहीं जाता तो उसको कोई पाप नहीं लगेगा, पर मना करनेवालोंको पाप लग जायगा। इसलिये उनके भलेके लिये उनकी बात नहीं माननी चाहिये कि वे कहीं पापी न बन जायँ, उनको कहीं नरक न हो जाय! तात्पर्य है कि जो भगवत्सम्बन्धी बातोंके लिये, आत्मोद्धारकी बातोंके लिये मना करते हैं, उनकी बातको नहीं मानना चाहिये। खूब निधड़क होकर सत्संगमें जाना चाहिये और साफ कह देना चाहिये कि मैं तो सत्संगमें जाऊँगा। परन्तु बहनो! इतनी बात जरूर हो कि उद्दण्डता न हो, उच्छृंखलता न हो, मनमाना आचरण न हो। एक ही ध्येय, लक्ष्य हो कि हमें पारमार्थिक उन्नति ही करना है। मेरी तो यहाँतक धारणा है कि यदि हृदयमें सत्संगकी जोरदार इच्छा होगी तो उसको सत्संगमें गये बिना लाभ हो जायगा, दूर बैठे ही उसके मनमें उस सत्संगके भाव पैदा हो जायँगे! भगवान् तो भावको ग्रहण करते हैं—'**भावग्राही जनार्दनः**'।

भगवान् हमारे सदाके माँ, बाप, पति, गुरु, आचार्य हैं; अतः उनकी आज्ञामें चलो। कर्तव्य-अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र प्रमाण है—'**तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ**' (गीता १६। २४)। शास्त्रकी आज्ञा है कि सत्संग, भजन, ध्यान करो। इसलिये कभी मत डरो, निधड़क रहो। पतिकी सेवा करो उत्साहपूर्वक। जैसे, कोई मुनीम या नौकर है, पर उसका मालिक उसको भजन-ध्यानके लिये मना करता है तो उसको मालिकसे कड़वा नहीं बोलना चाहिये, पर

मनमें यह विचार पक्का रखना चाहिये कि मैंने इसको समय दिया है और समयके मैं पैसे लेता हूँ, पर मैंने अपना धर्म नहीं बेचा है। यदि वह कहे कि झूठी बही लिखनी पड़ेगी, झूठ-कपट करना पड़ेगा, सेल्स टैक्स और इनकम टैक्सकी चोरी करनी पड़ेगी, नहीं तो मैं नौकर नहीं रखूँगा तो उसको यह बात मनमें रखनी चाहिये कि अच्छी बात है। वह हमें छोड़ दे तो ठीक है, पर अपने मत छोड़ो। यदि मालिक ऐसे नौकरका त्याग करेगा तो ऐसा ईमानदार नौकर उसको फिर नहीं मिलेगा। जो आदमी मालिकके कहनेपर सरकारकी चोरी नहीं करता, वह मालिककी भी चोरी नहीं करेगा। उसको मालिक छोड़ देगा तो पीछे वह रोयेगा ही। अपने तो निधड़क, नि:शंक रहो कि हमने तो कोई पाप नहीं किया। हम पाप, अन्याय नहीं करते तो कुटुम्बी, सम्बन्धी भले ही नाराज हो जायँ, उस नाराजगीसे बिलकुल मत डरो। मीराबाईने कहा है—***'या बदनामी लागे मीठी!'*** वे भगवान्‌की पक्की भक्त थीं। उन्होंने कलियुगमें गोपी-प्रेम दिखा दिया। उनको कितना मना किया, जहर दिया, सिंह छोड़ दिया और कहा कि तू हमारेपर कलंक लगानेवाली है तो भी मीराबाईने कोई परवाह नहीं की। अत: आपका हृदय यदि सच्चा है और भजन-ध्यान कर रहे हैं तो कोई धड़कन लानेकी जरूरत नहीं है।

यदि पति सत्संगमें जानेके लिये मना करता है तो पतिके हितके लिये उससे बड़ी नम्रता, सरलतासे कह दो कि मैं सत्संगकी बात नहीं छोड़ूँगी। आप जो कहो, वही काम करूँगी। आपकी सेवामें कभी त्रुटि नहीं पड़ने दूँगी, पर सत्संग-भजन नहीं छोड़ूँगी। आप सत्संगमें जानेकी आज्ञा दे दो और खुद भी सत्संगमें चलो तो बड़ी अच्छी बात है, आपकी-हमारी दोनोंकी इज्जत रहेगी, नहीं तो सत्संगमें मैं जाऊँगी। घरमें कोई शोक हो जाय, कोई मर जाय तो ऐसे समयमें भी सत्संगमें, मन्दिरोंमें और तीर्थोंमें जानेके लिये कोई

मना नहीं है अर्थात् जरूर जाना चाहिये। शोकके समय सत्संगमें जानेसे शोक मिटता है, जलन मिटती है, शान्ति मिलती है, इसलिये जरूर जाना चाहिये।

एक बात बहनोंसे कहता हूँ, ध्यान देकर सुनें। भाई भी सुनें। घरमें कोई शोक हो जाय और कोई बहन सत्संगमें चली जाय तो ये माताएँ बहुत चर्चा करती हैं कि 'देखो! कल इसका बाप मरा, पति मरा और आज यह सत्संगमें जा रही है!' इस तरह किसीको सत्संगमें जानेसे रोकना पाप है, हत्या है। वह कहीं विवाहमें जाय, गीत-गाने गाये तो ठीक नहीं है, पर सत्संगमें जाय तो क्या हर्ज है! सत्संगमें जानेसे उसका शोक दूर होगा, चिन्ता दूर होगी, पाप दूर होगा। अतः उसको सत्संगमें ले जाना चाहिये और कहना चाहिये कि हम भी जाती हैं, तुम भी चलो। बाप मर गया, माँ मर गयी, गुरुजन मर गये, पति मर गया तो यह बड़े दुःखकी बात है, पर यह दुःख मिटेगा सत्संग करनेसे, भजन-ध्यान करनेसे, भगवान्‌के शरण होनेसे। आप ऐसा सोचें कि सत्संग, भजन-ध्यानसे हमें जो पुण्य मिले, वह हमारे माँ-बापको, पतिको, गुरुजनोंको मिले। माँ-बाप आदिके लिये सत्संग करो, भजन-ध्यान करो। अतः शोकके समय भी उत्साहपूर्वक सत्संगमें जाना चाहिये।

कई जगह यह बहुत बुरी रीति है कि पति मर जाय तो स्त्री दो-दो, तीन-तीन वर्षतक एक जगह बैठी रोती रहती है। बाहर जा नहीं सकती। इस रीतिको मिटाना है। मेरे काम पड़ा है। कलकत्तेकी बात है। दो स्त्रियाँ ऐसी थीं, जिनके पति मर गये। सेठजीके छोटे भाई मोहनलालजीकी मृत्यु हो गयी। उनकी स्त्री सावित्री वहाँ थी। मैं उनके घरपर गया और कहा कि तुम सत्संगमें आओ, रामायणके पाठमें आओ। वह सत्संगमें आने लगी। एक अन्य सज्जन मर गये तो उनकी पत्नीको भी मैंने सत्संगमें आनेके लिये कहा। उसने कहा कि लोग क्या कहेंगे! तो मैंने कहा कि हमें ऐसी रीति शुरू करनी

है। शोकके समय सत्संगमें, तीर्थोंमें, मन्दिरोंमें अवश्य जाना चाहिये और दुःख मिटाना चाहिये। घरमें तो शोक ही होगा और स्त्रियाँ भी जा-जाकर शोककी ही बातें सुनायेंगी। दुःखकी बातें सुननेसे दुःख होता है और सत्संगकी बातें सुननेसे सुख होता है। अतः माताओ! कृपा करो, यह भिक्षा दो कि जो सत्संगमें जाये, उसकी चर्चा मत करो। आपकी चर्चासे बड़ा नुकसान होता है। वह सत्संगमें जाती है, भजन-ध्यान करती है तो कौन-सा पाप, अन्याय करती है?

**चुगल जुआरी मसखरा अन्यायी अरु चोर,**
**वरण-भेल विधवा-भखी गर्भगेर अघ घोर।**
**गर्भगेर अघ घोर ऊँच वेश्या-घर जाई,**
**मद मांसी रत वाम हत्यारा पलट सगाई।**
**'रामचरण' संसारमें इन सबहनको ठौर,**
**राम-भगत भावै नहीं, जगत हरामीखोर॥**

इतने-इतने पापी तो जगत्‌में रह सकते हैं, पर भगवान्‌का भक्त जगत्‌में नहीं रह सकता! ऐसा मत करो। सत्संगमें जानेके लिये उत्साहित करो। पाँच-दस बहनें साथमें होकर कहें कि तुम सत्संगमें चलो। कोई कहे कि यह कैसे आ गयी? तो कहो कि हम इसे साथमें ले आयीं। मैंने कई जगह कहा है कि कोई तुमसे कहे कि तुम सत्संगमें क्यों जाती हो तो उससे कह देना कि स्वामीजीने हमारे घर आकर सत्संगमें आनेके लिये कह दिया, इस कारण जाती हूँ। उनका कहना मानना ही पड़ता है! इस तरह सब कलंक मेरेपर दे दो! ऐसे आप भी अपनेपर कलंक ले लो कि हम भी जायँगी और साथमें इसको भी ले जायँगी। इस तरह आप उत्साह रखो तो सत्संगका प्रचार होगा, सबका हृदय शुद्ध होगा, सबके लाभकी बात होगी।

हमने एक बात सुनी है और पद भी पढ़े हैं। मीराबाईने तुलसीदासजी महाराजको पत्र लिखा कि मेरे तो आप ही माँ-बाप

हैं, अतः मैं आपसे पूछती हूँ कि मैं भजन-ध्यान करना चाहती हूँ, पर मेरे पति मना करते हैं तो मेरेको क्या करना चाहिये?* उत्तरमें गोस्वामीजी महाराजने लिखा—

**जाके प्रिय न राम-बैदेही।**
**तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥ १॥**
**तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।**
**बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी॥ २॥**
**नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं।**
**अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं॥ ३॥**
**तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो।**
**जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो॥ ४॥**

(विनयपत्रिका १७४)

जिसको सीतारामजी प्यारे नहीं लगते, उसको करोड़ों वैरियोंके समान समझना चाहिये। इस विषयमें गोस्वामीजीने अनेक उदाहरण दिये। प्रह्लादजीका उदाहरण दिया कि उन्होंने पिताको छोड़ दिया। परन्तु इससे यह उलटी बात मत पकड़ लेना कि हम भी पिताको छोड़ देंगे, पिताका कहना नहीं मानेंगे! प्रह्लादजीने तो केवल

---

* स्वस्ति श्रीतुलसी गुण-भूषण दूषण-हरण गोसाँई।
बारहिं बार प्रणाम करहुँ अब हरहु शोक-समुदाई॥ १॥
घरके स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढ़ाई।
साधुसंग और भजन करत मोहिं देत कलेस महाई॥ २॥
सो तो अब छूटत नहिं क्यों हूँ लगी लगन बरियाई।
बालपनेमें मीरा कीन्हीं गिरधरलाल मिताई॥ ३॥
मेरे मात तात सब तुम हो हरिभक्तन सुखदाई।
मोकों कहा उचित करिबो अब सो लिखिये समुझाई॥ ४॥

पिताजीकी भजन-निषेधकी बात नहीं मानी। भगवान्‌ने प्रह्लादजीसे कहा कि वरदान माँग तो उन्होंने कहा कि महाराज! माँगनेकी इच्छा नहीं है, पर आप माँगनेके लिये कहते हो तो मालूम होता है कि मेरे मनमें कामना है। अगर मेरे मनमें कामना न होती तो आप अन्तर्यामी होते हुए ऐसा कैसे कहते? अतः मैं यही वरदान माँगता हूँ कि मेरे मनमें जो कामना हो, वह नष्ट हो जाय। भगवान्‌ने कहा कि ठीक है। फिर प्रह्लादजीने कहा कि मेरे पिताका कल्याण हो जाय। इस तरह भजनमें बाधा देनेवालेके लिये प्रह्लादजी वरदान माँगते हैं, निष्काम होते हुए भी कामना करते हैं कि मेरे पिताका कल्याण हो जाय! क्यों माँगते हैं वरदान? इसलिये कि भगवान् और सब सह सकते हैं, पर भक्तका अपराध नहीं सह सकते—

**सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥**
**जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥**

(मानस २। २१८। २-३)

प्रह्लादजीने विचार किया कि मेरेको पिताजीने सत्संग, भजन-ध्यानके लिये मना किया है, अतः ठाकुरजी उनपर नाराज हैं। इसलिये प्रह्लादजीने ठाकुरजीसे क्षमा माँग ली कि महाराज! पिताजीको क्षमा करो, जिससे उनका कल्याण हो जाय। भगवान्‌ने कहा कि तेरे वंशका कल्याण हो गया, पिताकी क्या बात है!

माँका ऋण सबसे बड़ा होता है। परन्तु पुत्र भगवान्‌का भक्त हो जाय तो माँका ऋण नहीं रहता और माँका कल्याण भी हो जाता है!

**कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।**
**अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिन् लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥**

(स्कन्दपुराण, माहे० कौमार० ५५। १४०)

ज्ञान एवं आनन्दके अपार समुद्र परब्रह्म परमात्मामें जिसका

चित्त विलीन हो गया है, उसका कुल पवित्र हो जाता है, माता कृतार्थ हो जाती है और पृथ्वी पवित्र हो जाती है।

इसलिये बहनो! माताओ! अपने बालकोंको भगवान्‌में लगाओ, उनको भक्त बनाओ—

**जननी जणै तो भक्त जण, कै दाता कै सूर।**
**नहिं तो रहिजै बाँझड़ी, मती गमाजे नूर॥**

आपकी गोदीमें भक्त आये, भगवान्‌का भजन करनेवाला आये। ***'गोद लिये हुलसी फिरे, तुलसी सो सुत होय'***—ऐसा बेटा हो। गोस्वामीजी महाराजकी वाणीसे जगत्‌का कितना उपकार हुआ है! उनकी वाणीसे कितनोंको शान्ति मिलती है! ऐसे बालक होना बिलकुल आपके हाथकी बात है। बालकका पहला गुरु माँ है। माँका स्वभाव पुत्रपर ज्यादा आता है—***'माँ पर पूत, पिता पर घोड़ा, बहुत नहीं तो थोड़ा-थोड़ा।'*** कारण कि वह माँके पेटमें रहता है, माँका दूध पीता है, माँसे बोली सीखता है, माँसे चलना-बैठना, खाना-पीना आदि सीखता है। माँ दाईका, नाईका, दर्जीका, धोबीका, मेहतरका काम भी करती है और ऊँचा-से-ऊँचा शिक्षा देनेका काम भी करती है। माँकी शिक्षा पाये बालक बड़े सन्त होते हैं। जितने-जितने सन्त हुए हैं, मूलमें उनकी माताएँ बड़ी श्रेष्ठ, ऊँचे दर्जेकी हुई हैं। उनकी शिक्षा पाकर बालक श्रेष्ठ हुए। ऐसे आप भी अपने बालकोंको तैयार करो। आपका बेटा हो, पोता हो, दौहित्र हो, उसको बचपनमें ऐसी बातें सिखाओ कि वह भक्त बन जाय, भजनमें लग जाय। आपको कितना पुण्य होगा! उस बालकका उद्धार होगा और उसके द्वारा कितनोंको लाभ होगा, कितनोंका कल्याण होगा! भक्तके द्वारा दूसरोंको स्वतःस्वाभाविक लाभ होता है। उसके वचनोंसे, दर्शनसे, चिन्तनसे, उसका स्पर्श करके बहनेवाली हवासे दूसरोंको लाभ होता है। अतः माताएँ, बहनें, भाई सब-के-सब भगवान्‌के भजनमें तल्लीन हो जाओ, भक्त बन जाओ। इससे बड़ा भारी उपकार होगा।

प्रायः बहनोंके मनमें आती है कि हमारे पास रुपये हों तो हम दान-पुण्य करें। परन्तु दान-पुण्यसे इतना ऊँचा काम नहीं होगा, जितना भजन-ध्यानसे होगा। भजन-ध्यानसे भगवान्‌में तल्लीन होकर पवित्र बनोगे। दान-पुण्यसे आप इतने पवित्र नहीं बन सकते। इसलिये भजन करो, भगवान्‌में तल्लीन हो जाओ। इसका बहुत ज्यादा माहात्म्य है। अच्छे-अच्छे गुण धारण करो। किसीको कोई तकलीफ न हो—इसका खयाल रखो। चुगली करना, इधर-उधर बात फैलाना, द्वेष पैदा करना, कलह करवाना—यह महान् हत्या है, बड़ा भारी पाप है।

एक कहानी आती है। एक नौकर मुसलमानके यहाँ जाकर रहा। रहनेसे पहले उसने कह दिया कि मेरी इधर-की-उधर करनेकी आदत है, पहले ही कह देता हूँ! मियाँने सोचा कि कोई परवाह नहीं, ***'मियाँ बीबी राजी तो क्या करेगा काजी'*** और रख लिया उसे। अब वह एक दिन जाकर रोने लगा तो बीबीने पूछा कि रोता क्यों है? तो बोला कि आपके घर रहता हूँ, तनखा पाता हूँ, जिससे मेरा काम चलता है। आपके हितकी बात कहनेकी मनमें आती है, पर क्या करूँ, आपको जँचे, न जँचे! दुःख होता है! बीबीने कहा कि बता तो दे, क्या दुःख है? उसने कहा कि मियाँ साहब तो दूसरी शादी करना चाहते हैं, आपके आफत आ जायगी! तो बीबीने पूछा कि इसका कोई उपाय है? उसने कहा—'हाँ, इसका उपाय है। आप मियाँकी दाढ़ीके कुछ केश ले आओ तो मैं उसकी एक ताबीज (यन्त्र) बना दूँगा, फिर सब ठीक हो जायगा।' उधर उस मियाँको जाकर कह दिया कि 'बीबी आपसे बड़ा द्वेष रखती है, कभी मारेगी आपको! मेरे आगे बात करती है, इसलिये आप खयाल रखना।' अब मियाँ भी सजग रहने लगा कि कहीं मेरेको मार न दे। एक दिन मियाँ नींदका बहाना बनाकर लेटे हुए थे। वह दाढ़ीके केश काटनेके लिये छुरी लेकर आयी तो

उसने सोचा कि यह तो मेरा गला काटेगी। अत: दोनोंमें बड़ी कलह हो गयी। इसलिये कहा है—

**चुगलखोरसे बात न करना, खड़ा न रहना पास।**
**मियाँ बीबी दोनों मरे, भयो कुटुम्ब को नास॥**

चुगलखोर बड़ा खराब होता है। बहनों-माताओंमें यह आदत होती है कि इसकी बात उसको कहकर दोनोंमें झगड़ा करा देती हैं। क्या हाथ आता है, बताओ? सास-बहू, जेठानी-देवरानीमें लड़ाई करा देती हैं, भाई-भाईको न्यारा करा देती हैं।

**बायाँ सुणो तो सरी, रामजी दयालजी ने क्यूँ बिसरी॥**
**पाँच सात तो भाई भेला, कैसा लागे प्यारा।**
**जे बायाँ रो हुकुम चले तो कर दे न्यारा न्यारा॥ बायाँ०॥**
**परमारथ ने पतली पोवे, घर काँ ताँयी जाड़ी।**
**साहेब के दरबार में तेरी किस विध आसी आड़ी॥ बायाँ०॥**
**चोखा चावल मोठ बाजरी, घर में आघा मेले।**
**अलियो धाण अरु घणा कांकरा, माँगणियाँने ठेले॥ बायाँ०॥**
**खावण ने खाथी घणी अरु राम भजन ने माठी।**
**जवायाँ रा गीत गावणने, जाय जगत में नाठी॥ बायाँ०॥**
**घर में बातां बाहर बातां, बातां आता जातां।**
**आ बातां में नफो नहीं है, जम मारेला लातां॥ बायाँ०॥**

आपकी क्या दशा होगी? सारे दिन बातें करती रहती हो। राम-राम करो तो निहाल हो जाओ! उतना ही तो खर्चा है और क्या है? दुनियाकी कथा क्यों करो, राम-राम करो, जिससे अपना भी कल्याण और दूसरोंका भी कल्याण! कोई ऐसी-वैसी बात करने आ जाय तो आप राम-राममें; भजनमें लग जाओ। जैसे मक्खियाँ मुँहपर बैठती हैं तो बढ़िया इत्र मुँहपर लगा लो, एक भी मक्खी

मुँहपर नहीं बैठेगी, ऐसे ही कोई बात करने आ जाय तो भगवान्‌की बात, सत्संगकी बात छेड़ दो, राम-राम करो। वह चली जायगी, टिकेगी नहीं। मक्खियाँ तो गन्दगीपर ही ठहरती हैं, उनको सुगन्ध नहीं सुहाती।

**तुलसी पूरब पाप ते, हरिचर्चा न सुहात।**
**जैसे ज्वरके जोर से, भूख बिदा हो जात॥**

किसीको ज्वर आ जाय तो उसको अन्नकी गन्ध आती है। अन्न अच्छा नहीं लगता; क्योंकि भीतरमें खराबी है। ऐसे ही जिसका अन्तःकरण खराब है, उसको सत्संग-भजन अच्छा नहीं लगता।

अपने अन्तःकरणमें कोई गड़बड़ी आ जाय तो भगवान्‌को पुकारो, हे नाथ! हे नाथ!! पुकारो। यह एक दवाई है असली भगवान्‌को याद करो, खूब मस्त रहो। अपने कल्याणके लिये, पतिके कल्याणके लिये, माता-पिताके कल्याणके लिये भगवान्‌के भजनमें लग जाओ। पुरुष यदि श्रेष्ठ, उत्तम होता है तो वह अपने ही कुलका उद्धार करता है; परन्तु स्त्री श्रेष्ठ होती है तो वह दोनों कुलोंका उद्धार कर देती है—

**एवा उत्तम गुण थी उभय सुकुल उजवालिये हे।**
**सखियाँ निज-निज नीति धर्म सदा सम्भालिये हे॥**

महाराज जनक चित्रकूट गये। वहाँ सीताजी सादे वेशमें थीं। कितने प्रेमसे पली थीं सीताजी! माता-पिताका उनपर बड़ा स्नेह था। जनकपुरीके कई राजकीय आदमी जनकजीके साथमें आये थे। उन्होंने सीताजीको साधारण वेशमें देखा तो रो पड़े कि हमारे महाराजकी पुत्री जंगलमें रहकर दुःख पा रही है! रहनेको जगह नहीं, खानेको अन्न नहीं, पहननेको पूरा बढ़िया कपड़ा नहीं! परन्तु महाराज जनक बड़े राजी हुए और बोले कि बेटी! तूने दोनों कुलोंको पवित्र कर दिया—***'पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ'*** (मानस २। २८७। १)। स्त्रियाँ श्रेष्ठ होती हैं तो दोनों कुलोंका उद्धार

करती हैं और खराब होती हैं तो दोनों कुलोंका नाश करती हैं। इसलिये बहनो! धर्मकी, कुलकी मर्यादामें चलो। बालकोंपर, कुटुम्बियोंपर आपके आचरणोंका असर पड़ता है। समुद्रके बीचमें यह पृथ्वी किस बलपर धारण की हुई है?—

**गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।**
**अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥**

(स्कन्दपुराण, माहे० कुमार० २। ७१)

'गायें, ब्राह्मण, वेद, सती स्त्री, सत्यवादी, लोभरहित और दानशील सन्त-महापुरुष—इन सातोंके द्वारा यह पृथ्वी धारण की जाती है अर्थात् इनपर पृथ्वी टिकी हुई है।' अतः सती स्त्रियोंसे पृथ्वीकी, दुनियाकी रक्षा होती है—'***एक सती और जगत् सारा, एक चन्द्रमा नौ लख तारा***'। इतना बल आपमें है! इसलिये आप धर्मका अच्छी तरहसे पालन करें। आप धर्मकी रक्षा करो तो धर्म लोकमें, परलोकमें, सब जगह आपकी रक्षा करेगा—'**धर्मो रक्षति रक्षितः**'। कई बहनोंको पता नहीं है कि धर्म क्या कहता है? शास्त्र क्या कहता है? तो वाल्मीकि-रामायण, तुलसीकृत रामायण आदि ग्रन्थ पढ़ो। परन्तु ग्रन्थोंको पढ़नेमें हमारी बुद्धिकी प्रधानता रहती है, जिससे पूरा अर्थ खुलता नहीं। पुस्तकोंमें अच्छी-अच्छी बातें पढ़नेपर भी अपनी बुद्धिकी मुख्यता रहनेसे हम उन बातोंको इतना नहीं समझ पाते, जितना हम सत्संगके द्वारा सुनकर समझ पाते हैं। इसलिये भाइयो! बहनो! सत्संग करो। आजकल अच्छी बातें मिलती नहीं हैं। बहुत कम जगह मिलती हैं। अगर मिल जायँ तो विशेषतासे लाभ लेना चाहिये। करोड़ों काम बिगड़ते हों तो भी यह मौका चूकने नहीं देना चाहिये—'**कोटिं त्यक्त्वा हरिं स्मरेत्**'। खेत सूख जाय तो फिर वर्षासे क्या होगा—

**का बरषा सब कृषी सुखानें। समय चुकें पुनि का पछितानें॥**

(मानस १। २६१। २)

इसलिये मौका चूकने मत दो और खूब उत्साहपूर्वक सत्संग, भजन, ध्यानमें लग जाओ। बड़ोंकी सेवा करो। उनकी आज्ञामें रहो। सत्संगके लिये उनके चरणोंमें गिर करके, रो करके आज्ञा माँग लो कि मेरेको यह छुट्टी दो! आप जो कहो, वही मैं करूँगी; परन्तु यह एक छुट्टी चाहती हूँ। इतना हृदयका कड़ा कौन होगा, जो सेवा करनेवालेकी एक इतनी-सी बात भी नहीं मानेगा!

लखनऊके एक कायस्थ घरकी बात है। लड़की वैष्णवोंके घरकी और शुद्ध आचरणोंवाली थी, पर पतिका खाना-पीना सब खराब था। महाराज! सुनकर आश्चर्य आये, ऐसी बात मैंने सुनी शरणानन्दजी महाराजसे! वह लड़की आज्ञा-पालन करती, मांस बनाकर देती। आप भोजन करती तो स्नान करके दूसरे वस्त्र पहनती और अपनी रोटी अलग बनाकर खाया करती। कितनी तकलीफ होती, बताओ! ऐसा गन्दा काम भी कर देना और अपनी पवित्रता भी पूरी रखना! एक बार पति बीमार हो गया। उसने खूब तत्परतासे रातों जगकर पतिकी सेवा की। पति ठीक हो गया तो उसने कहा कि तुम मेरेसे एक बात माँग लो। उसने कहा कि आप सिगरेट छोड़ दो। इस बातका पतिपर इतना असर पड़ा कि उसने मांस-मदिरा सब छोड़ दिया। क्योंकि इतनी सेवा करके भी अन्तमें उसने एक छोटी-सी बात सिगरेट छोड़नेकी माँगी! अतः माताओ! बहनो! अपनी माँग बहुत कम रखनी है और सेवा करनी है। परन्तु पतिके कहनेसे सत्संग-भजनका त्याग नहीं करना है; क्योंकि इस बातको माननेसे उसको नरक होगा। अपना ऐसा कोई भी आचरण नहीं होना चाहिये, जिससे पतिको नरक हो जाय। अतः पति, माता-पिता आदिको पापसे बचानेके लिये सत्संग करो। अपनी मर्यादा मत छोड़ो। अपना जीवन शुद्ध, निर्मल और मर्यादित हो, फिर कोई डर नहीं। मीराबाई भजन करती हुई डरती नहीं हैं। इतनी आफत होनेपर भी भजन करती हैं—

**राणाजी म्हें तो गोबिन्द का गुण गास्याँ।**
**हरिमंदिर में निरत करास्याँ, घूँघरिया घमकास्याँ॥**

स्त्री-जाति, बड़े घरानेमें पैदा हुई, परदेमें रही, परदेमें ब्याही गयी—वह मीराबाई निधड़क होकर अकेले ही मेड़तेसे द्वारिका चली गयी! डर है ही नहीं मनमें। ये जो पुरुष बैठे हैं, इनको घरसे निकाल दिया जाय तो इनको मुश्किल हो जाय, भीतरमें खलबली मच जाय कि कहाँ रहेंगे? क्या खायेंगे? परन्तु स्त्री-जाति होनेपर भी मीराबाईको भगवान्‌का भरोसा है—

**मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।**
**जाके सिर मोर-मुकुट, मेरो पति सोई॥**

जो सब संसारका पालन-पोषण करनेवाला है, वह क्या भक्तोंकी उपेक्षा कर सकता है? **'यो हि विश्वम्भरो देवः स भक्तान् किमुपेक्षते'**। अतः किसीसे डरनेकी, चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है। सत्संग आदिके लिये कोई मना करे तो साफ कह देना चाहिये कि आपकी यह बात मैं नहीं मानूँगी; क्योंकि इसमें आपका अहित है और आपका अहित मेरेको अभीष्ट नहीं है। सत्संग, भजन, ध्यान निःशंक होकर, निधड़क होकर करो। हाँ, दिखावटी भजन नहीं करना है, दम्भ नहीं करना है।

भीतरमें और बात तथा बाहरमें और बात—यह नहीं होना चाहिये—***'ऊपर मीठी बात, कतरनी काँखमें। आग बुझी मत जान, दबी है राखमें।'*** ऊपरसे मीठी बात करना और भीतरमें कपट रखना—यह बहुत खराब है!

**क्यूँ खोदे तू खाडो रे।**
**तू तो जाणे दूजो पड़सी, आसी थारे आडो रे॥**

इसलिये बड़ी सावधानीसे जीवन पवित्र बनाओ, सुन्दर बनाओ। भगवान्‌के सम्मुख हो जाओ, फिर डरनेकी जरूरत नहीं। हम

त्रिलोकीनाथ परमात्माके सम्मुख हैं, फिर डर किस बातका? परन्तु उद्दण्डता, उच्छृंखलता नहीं करनी है, कटु बर्ताव नहीं करना है। बड़े प्रेमका, आदरका बर्ताव करना है। कारण कि प्रेमका बर्ताव करनेसे आपका भाव शुद्ध, निर्मल होगा, जिसका भगवान्‌पर, सन्त-महात्माओंपर असर पड़ेगा। वे आपके पक्षमें होंगे।

सत्संगका मौका बहुत कम मिलता है—

**तात मिलै पुनि मात मिलै सुत भ्रात मिलै युवती सुखदाई।**
**राज मिलै गज-बाजि मिलै सब साज मिलै मनवांछित पाई॥**
**लोक मिलै सुरलोक मिलै बिधिलोक मिलै बैकुंठहु जाई।**
**'सुन्दर' और मिलै सब ही सुख संत समागम दुर्लभ भाई॥**

सत्संग दुर्लभतासे मिलता है। सत्संगकी बड़ी विचित्र महिमा है! हनुमान्‌जी लंकामें जाने लगे तो उनको लंकिनीने पकड़ लिया और कहा कि मेरा निरादर करके कहाँ जाते हो? लंकामें जो चोर होता है, वह मेरा आहार होता है! हनुमान्‌जीने जोरसे एक मुक्का मारा। लंकिनीके मुँहसे खून बहने लगा। ऐसी दशा होनेपर वह बोली—

**तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।**
**तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥**

(मानस ५। ४)

लवमात्र सत्संगके समान दूसरा कोई सुख नहीं है। स्वर्ग और मुक्तिका सुख भी उसकी तुलना नहीं कर सकता। इतनी महिमा है भगवत्प्रेमीके संगकी। हनुमान्‌जीका मुक्का लगा—यह सत्संग हुआ। लंकिनीने जान लिया कि राक्षसोंका काल आ गया, अब सब राक्षस खत्म हो जायँगे—***'बिकल होसि तैं कपि कें मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे॥'*** (मानस ५। ४। ४)। मुक्का खाकर वह खुशी

मनाती है और आशीर्वाद देती है कि भगवान्‌को याद रखकर लंकामें जाओ, तुम्हारा सब काम सिद्ध होगा। कारण कि भगवान्‌के प्यारे भक्तका संग हो गया, स्पर्श हो गया! इसलिये सत्संगकी विचित्र महिमा है। कोई कह नहीं सकता।

सन्तोंकी बड़ी विचित्र-विचित्र महिमा आती है। हमने सुना है कि नाभाजीकी आँखें नहीं थीं। भगवान्‌के भक्त थे। वे सन्तोंके यहाँ चले गये। जूतियोंमें, रज्जीमें पड़े रहते और जो कुछ मिलता, पा लेते तथा मस्त रहते। सन्तोंकी, गुरुकी आज्ञाका पालन करनेमें बड़े तत्पर रहते। उस आज्ञा-पालन और भजनसे उनको बड़े-बड़े अनुभव हो गये। तब गुरुजीने आज्ञा दी कि तुम भक्तोंके चरित्र लिखो। नाभाजीने कहा कि महाराज! भगवान्‌के चरित्र तो मैं लिख सकता हूँ, पर भक्तोंके चरित्र मैं कैसे लिखूँगा? तो गुरुजीने कहा कि भक्त आकर तुम्हें दर्शन देंगे और अपना चरित्र बतायेंगे। तब उन्होंने 'भक्तमाल' लिखी। भीतरके नेत्र खुल गये। भक्तोंका अद्‌भुत वर्णन किया। अतः सत्संगसे, सन्तोंकी कृपासे क्या नहीं हो सकता?

यह कलियुग और इसमें भगवान्‌का नाम मिल गया, सत्संग मिल गया तो मानो सोनेमें सुगन्ध है! ऐसे सुन्दर अवसरको जाने मत दो। कष्ट उठाकर भी किसी तरह लोगोंको सत्संगमें लाओ। बड़ी-बूढ़ी माताओंको सत्संगमें लाओ। उनको हाथ पकड़कर अपने साथ लाओ और सत्संगमें बैठाओ। वे नहीं बैठ सकें तो एक तरफ बिछौना बिछाकर उसपर लिटा दो कि लेटकर सुनती रहो अथवा कुर्सी रखकर उसपर बैठा दो। इस प्रकार उनको सत्संग सुननेका मौका दो। भाइयोंसे भी यही कहना है कि जो बड़े-बूढ़े हों, उनको लाओ। एक जगह बैठा दो अथवा जहाँ छाया हो, वहाँ लिटा दो। सत्संग सुनाकर उनको घरपर पहुँचा दो। आपको बड़ा पुण्य होगा। भोजन देनेका भी पुण्य होता है तो क्या सत्संगके लिये अवसर

देनेका पुण्य नहीं होगा? जो सत्संगको नहीं मानते, उनको भी पैरोंमें पड़कर सत्संगमें लाओ।

बीकानेरकी ही बात है। एक लड़का माँकी आज्ञाका पालन करता था। वह रोज माँको सत्संगमें पहुँचाता और सत्संग उठता तो आकर माँको ले जाता। एक दिन माँने उससे कहा कि तू भी दो-तीन दिन सत्संग सुन ले, बैठ जा। वह सत्संग सुनने लगा। अब वह कहता है कि सत्संग छूटता ही नहीं मेरेसे। चखे बिना क्या पता चले कि लड्डूमें कितना स्वाद है! अतः जिन्होंने सत्संग किया ही नहीं, वे बेचारे क्या जानें? ***'मायाको मजूर बन्दो कहा जाने बन्दगी'***। दूसरे सत्संग करें—यह बात भी उनसे सही नहीं जाती! दूसरा साधुको भोजन करा दे—यह भी उनसे सहा नहीं जाता और कहते हैं—***'मुफ्तमें खावे मोडा'***। चोरी हम करते नहीं, डाका हम डालते नहीं। लोग खिलायें तब खाते हैं। लोगोंको मना करो तुम! परन्तु उनसे सहा नहीं जाता। सत्संग सुहाता नहीं, भजन-ध्यानकी बात सुहाती नहीं।

**मजाल क्या है जीव की जो राम नाम ले,**
**पाप देवे थापकी तो मूँडो फोर दे।**

न तो खुद सत्संग करते हैं, न दूसरोंको करने देते हैं—'खेतका अड़वा, न खावे न खाने दे'। पर आप पक्के रहें। आप भगवान्‌में लग जायँ तो पाप-ताप सब नष्ट हो जायँगे। जैसे सूर्यसे दुनियाका अन्धकार मिट जाता है, ऐसे ही सत्संगसे हृदयका अन्धकार मिट जाता है।

❑❑

# अहंताका त्याग

जैसे हम सब परमात्माके साक्षात् अंश हैं—'**ममैवांशः**,' '**ईस्वर अंस जीव अबिनासी**', ऐसे ही ये स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीर सब प्रकृतिके अंश हैं। प्रकृतिमें अपनेको बैठा देना और प्रकृतिको अपनेमें बैठा लेना—यह खास मूल बात है। हम आज शरीरके आरामको सुख क्यों मानते हैं? हमने अपनेको शरीरमें बैठा दिया। अपनेको शरीरमें बैठानेसे 'अहंता' पैदा होती है और शरीरको, संसारको अपनेमें बैठानेसे 'ममता' पैदा होती है यह खास समझनेकी बात है।

अपनेको शरीरमें बैठानेसे 'शरीर मैं हूँ'—इस तरह शरीरके साथ अपनी अभिन्नता हो गयी, जो कि मानी हुई है; क्योंकि आप चेतन हैं और शरीर जड है। चेतनकी जड शरीरके साथ अभिन्नता हो ही कैसे सकती है? शरीर अलग है और आप अलग हैं। शरीर जाननेमें आता है और आप उसको जाननेवाले हैं। परन्तु अपनेको शरीरमें बैठानेसे शरीरकी मुख्यता हो गयी और अपनी बिलकुल गौणता हो गयी। अपनी गौणता होनेसे शरीरमें अहंभाव मुख्य हो गया, जडता मुख्य हो गयी। इसलिये पासमें जड चीजोंके होनेसे हम अपनी उन्नति मानते हैं। जिसके पास धन है, उसको बड़ा आदमी मानते हैं। शरीरकी जातिको ही बड़ा मानते हैं। मकान, जमीन, रुपया आदि भौतिक चीजोंकी जितनी अधिकता होती है, उतना ही अपनेको बड़ा मानते हैं। कारण कि मूलमें अपनी स्थिति शरीरमें कर ली। शरीरको अपनेसे बड़ा मान लिया, अपनेको शरीरके आश्रित मान लिया, शरीरके अधीन मान लिया तो इससे अहंता बढ़ेगी। शरीरका मान, आदर, सत्कार, पूजा होनेसे वह बड़ा राजी होता है; क्योंकि उसने शरीरमें ही अपनी स्थिति मान ली।

शरीरके आदरको ही अपना आदर, शरीरके सुखको ही अपना सुख, शरीरकी महत्ताको ही अपनी महत्ता मान लेना बड़ी भारी गलती है। कारण कि शरीर तो क्षणभंगुर है, नाशवान् है, जड़ है, उससे हमारी महत्ता कैसे हुई?

वस्तुओंको अपनेमें रखनेसे ममता हो जाती है। शरीर, धन, जमीन, आदमी आदि मेरे हैं; क्योंकि इनको अपनेमें रख लिया। धन कहीं पड़ा हुआ है, पर उसको अपनेमें रख लिया कि मेरा धन है। बुद्धि, विद्या आदिको अपनेमें स्थित कर लिया कि मुझे इतना याद है, इतने शास्त्रोंका ज्ञान है। इतना मेरा कुटुम्ब है तो कुटुम्बमें ममता हो गयी।

इस प्रकार अपनेको जडतामें स्थापन करनेसे 'अहंता' और जडताको अपनेमें स्थापन करनेसे 'ममता' हो जाती है। दोनोंके घुलने-मिलनेको 'अन्योन्याध्यास' कहते हैं। शरीर सत्य दीखता है—यह अर्थाध्यास है और शरीर मैं हूँ—यह ज्ञानाध्यास है। जैसे रस्सीमें साँप दीखता है तो रस्सीमें अर्थाध्यास है और 'साँप है'—ऐसा जो बोध होता है, यह ज्ञानाध्यास है। और भी कई अध्यास हैं। हम तो सीधी बात बताते हैं कि अपनेको शरीरमें रख दिया और शरीरको अपनेमें रख लिया—यह अन्योन्याध्यास है। अपनेको शरीरमें रखनेसे अहंता (मैं-पन) और शरीरको अपनेमें रखनेसे ममता (मेरा-पन) पैदा हो गयी।

शरीरमें मैं-पन और मेरा-पनका व्यवहार होता है। इन्द्रियोंमें भी मैं-पन और मेरा-पनका व्यवहार होता है। जैसे, इन्द्रियाँ मेरी हैं, आँख मेरी है, कान मेरा है, नाक मेरी है। आँख ठीक नहीं हो तो मैं काना हो गया, आँख नहीं है तो मैं अन्धा हो गया। अपनेको आँखमें रखनेसे मैं काना, अन्धा हो गया। संसारमें मैं-पनका व्यवहार कम होता है और मेरा-पनका व्यवहार मुख्य होता है। शरीरमें मैं-पनका व्यवहार मुख्य होता है और मेरा-पनका

व्यवहार कम होता है। मन-बुद्धिमें मेरा-पनका भी व्यवहार होता है और मैं-पनका भी। अहंकारमें भी ममता होती है, पर वह ममता गौण दीखती है और अहंता मुख्य दीखती है। अहंकारको अपनेमें स्थापन किया है, इसलिये अहंकार मेरा दीखता है। मेरा अहंकार क्या है? कि अहंकारपर टक्कर लगी तो मेरेपर टक्कर लगी! यह बात बहुत सूक्ष्म है।

कर्मयोग मुख्यरूपसे ममताको मिटाता है और ज्ञानयोग मुख्यरूपसे अहंताको मिटाता है। ममता मिटनेसे अहंता और अहंता मिटनेसे ममता मिट जाती है। दोनों साथ-साथ मिटते हैं।

शरीर, इन्द्रियाँ, अन्तःकरण, प्राण, मन, बुद्धि, विद्या, पद, योग्यता, अधिकार—ये सब घुल-मिलकर एक 'मैं' है। इस मिले हुए 'मैं' को ठीक-ठीक देखे तो ठीक ज्ञान हो जाता है अर्थात् शरीरादि पदार्थ मेरेसे अलग हैं, मेरा स्वरूप नहीं हैं—ऐसा दीखने लग जाता है। घुले-मिले 'मैं' को कुछ नहीं दीखता। वह तो बिलकुल अन्धा है!

गीतामें कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—इन तीनोंमें अहंता-ममताके त्यागकी बात आयी है; जैसे कर्मयोगमें—

**'निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।'**

(२।७१)

ज्ञानयोगमें—

**अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।**
**विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥**

(१८।५३)

भक्तियोगमें—

**'निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥**

(१२।१३)

सन्तोंने इसको मैं-मेरीका त्याग कहा है। मैं-पन और मेरा-

पनका त्याग ही वास्तवमें त्याग है। वस्तुओंको, पदार्थोंको छोड़कर चले जाना त्याग नहीं है। यह त्याग तो मरनेपर होता ही है! मरनेपर शरीर, घर आदि याद ही नहीं रहते। पहले जन्मकी कोई भी बात याद नहीं रहती। परन्तु यह त्याग नहीं है। यह तो केवल मैं-पन और मेरा-पनको बदल दिया, यहाँसे वहाँ रख दिया। जैसे,'मैं गृहस्थ हूँ'—इसको उठाकर 'मैं साधु हूँ'—इसमें रख दिया उसको। परन्तु बदलनेसे मुक्ति थोड़े ही हो जायगी! मुक्ति तो सम्बन्ध-विच्छेदसे होगी।

'मैं-पन' घुले-मिलेका नाम है। इस घुले-मिलेको दूर करनेकी सार बात बताता हूँ। मेरी एक धुन है कि सुगमतासे तत्त्वका बोध हो जाय! मैं-पन प्रकाशित होता है। मैं-पनका भान होता है। मैं-पनसे आप बिलकुल अलग हैं—यह बात सीधी बताता हूँ। वास्तवमें मैं-पन है नहीं। यदि अहंकार होता तो मनुष्य निरहंकार हो ही नहीं सकता। अतः अहंकार है ही नहीं। संसारमें मैं-पनके समान झूठा, असत्य कुछ है ही नहीं! संसारमें यदि कोई फालतू चीज है, महान् अनर्थ करनेवाली चीज है, तो वह है 'मैं-पन'! अहंता सबसे फालतू, निकम्मी, महान् अनर्थ करनेवाली है। जैसे, व्यवहारमें रुपया सबसे रद्दी है। मैलेसे, पेशाबसे भी रद्दी है। ऐसे ही यह अहंता सबसे रद्दी है; और बिलकुल है ही नहीं। सूर्यमेंसे प्रकाश और उष्णताको कोई निकाल सकता है क्या? अग्निमेंसे गरमी और प्रकाशको कोई निकाल सकता है क्या? नहीं निकाल सकता। निकलती वही चीज है, जो दूसरी होती है। मनुष्य निर्मम और निरहंकार हो सकता है, इससे सिद्ध होता है कि वास्तवमें उसमें अहंता-ममता है नहीं। अतः मैं-पन और मेरा-पन केवल कल्पना है।

स्वरूप सच्चिदानन्दघन परमात्मा है और मेरा क्या है? ईश्वर। चेतनमें मैं-पन होगा तो मैं-पन उड़ जायगा और चेतन रह

जायगा। ईश्वरमें मेरा-पन होगा तो मेरा-पन उड़ जायगा और ईश्वर रह जायगा। ज्ञानयोगकी दृष्टिसे मैं शुद्ध-बुद्ध, नित्य-चेतन हूँ और भक्तियोगकी दृष्टिसे मेरे केवल भगवान् हैं—ऐसा मान ले तो यह अहंता-ममता उड़ानेकी बहुत बढ़िया प्रक्रिया है।

मेरे केवल भगवान् हैं और कोई मेरा नहीं है—*'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'*। कुटुम्बी, शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण आदि कोई भी मेरा नहीं है। 'भगवान् मेरे हैं'—इस बातको तो कई मान लेंगे, पर 'दूसरा कोई मेरा नहीं है'—इस बातको नहीं मानेंगे। दूसरा कोई मेरा नहीं है—इस बातको नहीं माननेसे अनन्य भक्ति नहीं होती। महिमा जितनी है, वह सब अनन्य भक्तिकी ही है। भगवान्ने कहा है कि अनन्य भक्तोंके लिये मैं सुलभ हूँ—'**तस्याहं सुलभः**' (गीता ८।१४) और उनका योगक्षेम मैं वहन करता हूँ—'**योगक्षेमं वहाम्यहम्**' (गीता ९।२२)।

मनुष्योंने भगवान्को घरका एक सदस्य मान रखा है। जैसे माँ-बाप हैं, भाई-बन्धु हैं, स्त्री-पुत्र हैं, ऐसे एक भगवान् भी हमारे हैं—इस तरह भगवान्को भी एक सदस्य मान रखा है। आज मनुष्य स्त्री-पुत्र-जितना भी भगवान्को अपना नहीं मानते। अगर परिवार भूल जाय, कोई मर जाय तो दुःख होता है, पर भगवान् भूल जायँ तो कोई परवाह ही नहीं होती! भगवान्को तो साधारण चीज मान रखा है। कसौटी कसके देखो कि हम भगवान्का कितना आदर करते हैं, तब पता लगेगा। भगवन्नाम भूल गये तो कोई बात नहीं है, पर पाँच रुपये भी कहीं भूल गये तो खटकेगा। भगवान्को याद किये बिना समय बरबाद हो गया—यह खटकता ही नहीं! समय तो जितना मिला है, उससे एक क्षण भी ज्यादा नहीं मिलेगा, पर रुपया तो और भी मिल

जायगा। समय तो सब खर्च हो रहा है और खर्च होनेपर मरना पड़ेगा। परन्तु रुपये सब खर्च हो जायँ तो मरना थोड़े ही पड़ेगा! समय आपके जीवनका आधार है, पर आपका इधर खयाल ही नहीं है! बेहोशीमें पड़े हैं। कितनी नीची वृत्ति हो गयी, हद हो गयी।

❑❑

# ममताका त्याग

प्राप्त वस्तुओंमें ममता होती है और अप्राप्त वस्तुओंकी कामना होती है। अतः जो प्राप्त है, उनमें ममता न रखें और नयी कामना न करें तो इतनेमात्रसे जीवन्मुक्ति है। जिसको मुक्ति कहते हैं, जिसको दुर्लभ पद कहा है, जिसको ऋषि-मुनि, सन्त-महात्मा प्राप्त हुए हैं, जिसको अक्षर कहते हैं—'**यदक्षरं वेदविदो वदन्ति**', जिसकी प्राप्तिकी इच्छासे ब्रह्मचारीलोग ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं—'**यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति**', जिसको वीतराग पुरुष प्राप्त होते हैं—'**विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः**', उस परमपदकी प्राप्ति हो जाय केवल इतनी बातसे कि मिली हुई वस्तुमें ममता न करें और जो न मिला हो उसकी कामना न करें!

मिली हुई वस्तुओंको आप नष्ट कर दो, फेंक दो, जला दो—यह नहीं कहता मैं। वस्तुएँ हैं जैसे भी रहें, पर उनमें मेरा-पन न रखें। उनके रहते हुए मेरा-पन कैसे न रखें? देखो, आपलोगोंके अनुभवकी बात है। आप उसको काममें लेते ही हैं। जैसे, आपके मनमें कन्यादान करनेकी इच्छा हुई और आपने कन्यादान कर दिया। विवाह कर देनेके बाद कन्यामें आपकी वैसी ममता नहीं रहती। आपकी पुत्री थी और आप भी कहते थे कि मेरी कन्या है; परन्तु विवाह होनेके बाद क्या वैसी ममता है? तो आपको ममता छोड़ना आता है न? ध्यान दो इस बातपर।

**श्रोता**—कन्याकी ममता तो बिना प्रयास ही छूट जाती है; परंतु वस्तुओंकी ममता तो प्रयाससे भी नहीं छूटती!

**स्वामीजी**—कन्याकी ममता भी बहुत प्रयाससे छूटती है महाराज! उसको छोड़नेमें खर्चा लगता है; भाई-बन्धुओं,

सम्बन्धियों, कुटुम्बियों आदि कइयोंकी गरज करनी पड़ती है! इतना तो वस्तुओंकी ममता छोड़नेमें नहीं करना पड़ता। मैं तो कहता हूँ कि वस्तुओंके पासमें रहते हुए उनकी ममता छोड़ दो। उनकी ममता छोड़नेमें न तो आदमियोंको बुलाना पड़ेगा, न भोजन कराना पड़ेगा, न घरको सजाना पड़ेगा, कुछ भी नहीं करना पड़ेगा! कन्याके विवाहमें कितना जोर आता है! लखपतियों-करोड़पतियोंको चिन्ता लग जाती है। परन्तु ऐसी कठिनता लेकर भी आप कन्याकी ममता सुगमतापूर्वक छोड़ देते हो, तो फिर इस ममताको छोड़नेमें क्या जोर आता है आपको?

दूसरी बात बताऊँ! जैसे, आप मेरेको कपड़ा देना चाहो और मैंने कपड़ा ले लिया तो आपकी ममता छूटी कि नहीं छूटी? तो आपको ममता छोड़ना आता है न? कन्या देना बड़ा दान हुआ, छोटा-सा कपड़ा देना छोटा दान हुआ। दान छोटा हो या बड़ा, इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। अपनापन छोड़ना ही खास है। छोटी-बड़ी वस्तु देनेका मूल्य नहीं है, मूल्य तो ममता छोड़नेका है; क्योंकि मुक्ति ममता छोड़नेसे होती है। महाभारतमें साफ आया है—

**द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम्।**
**ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम्॥**

(महा०, शान्ति० १३। ४)

'दो अक्षरोंका '**मम**'(यह मेरा है) मृत्यु है और तीन अक्षरोंका '**न मम**'(यह मेरा नहीं है) अमृत, सनातन ब्रह्म है।'

—यह वेदव्यासजी महाराजकी वाणी है, जो सबसे बड़े महापुरुष हुए हैं! ग्रन्थ लिखनेवालोंमें व्यासजीके समान कोई नहीं है।

ममता छोड़नेके लिये है और आपको ममता छोड़ना आता

है। किसको नहीं आता है ममता छोड़ना? आपके घरपर भिक्षुक आता है और आप उसे रोटी दे देते हो तो आप उस रोटीको अपनी मानते हो क्या? आप कहेंगे कि दे देते हैं, तब ऐसा होता है। परन्तु जब नहीं देते हैं, तब भी ऐसा होता है; जैसे—अधिक मासमें बीस-तीस चीजें दान करनी हों तो बहनें-माताएँ पहले ही चीजें मँगाकर घरमें रख लेती हैं, पर उनमें आपकी ममता होती है क्या? छोरा उन चीजोंमेंसे एक गिलास भी उठा लाये तो आप कहते हो कि इसको वापस रखकर आओ; यह चीज देनेकी है, अपनी नहीं है। इस तरह जो चीज घरमें पड़ी है, उसकी रक्षा भी करते हो और मोल भी लाते हो, सब कुछ करते हो, पर मेरा-पन नहीं करते। कन्यादान किया, कपड़ा दे दिया, रोटी दे दी और घरमें पड़ी चीजें भी देनी हैं—इस विचारसे आप अपनापन छोड़ देते हो। ऐसे ही आपको बताऊँ कि एक दिन आपको शरीरसहित सम्पूर्ण वस्तुओंको छोड़ना पड़ेगा। एक दिन सब छूटेगा ही, छोड़े बिना आप रह सकते नहीं। धनको, घरको, शरीरको भी क्या आप सदा साथमें रख सकते हो? नहीं रख सकते। ऐसी असमर्थ अवस्थामें यदि आप पहलेसे ही उनका त्याग कर दो तो क्या जोर आये?

**अन्तहुँ तोहिं तजैंगे पामर, तू न तजै अबही ते।**

आप नहीं छोड़ोगे तो जबर्दस्ती छुड़ाया जायगा और आपको दुःख होगा, सन्ताप होगा। अगर आप छोड़ दो तो अनन्त सुख प्राप्त होगा—**'स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति'** (भर्तृहरि वैराग्यशतक)। इस बातपर आप थोड़ा विचार करो। देखो, कथा सुन ली, कहानी सुन ली तो अब चलो भाई—यह बात यहाँ नहीं है। मेरी बातें कथा-कहानीकी तरह नहीं हैं। मर्मकी बातें सुनो और अभीके-अभी निहाल हो जाओ—ऐसी बात है! परन्तु यह बात लोगोंको जँचती नहीं। वे यही

कहते हैं कि ऐसा कैसे हो सकता है! अरे, नहीं हो सकता तो मैं क्यों कहता हूँ? नहीं हो सके तो आप होनेका विचार कर लो। कठिनता पड़े तो पूछो!

देखो! आवश्यकता और कामना दो चीज हैं। आवश्यकता पूरी होनेवाली होती है, पर कामना कभी पूरी नहीं होती। कन्यादान करना आवश्यक है, पर उसके लिये चिन्ता करना आवश्यक नहीं है। कन्याको जहाँ जाना है, वहाँका प्रबन्ध अपने-आप बैठेगा। आपको उद्योग करना है, चिन्ता नहीं करनी है। कर्म करनेमें आपका अधिकार है, फलमें अधिकार नहीं है—'**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन**' (गीता २। ४७)। कन्यादानके लिये उद्योग करना आपका काम है। कन्यादान हो ही जाय—यह आपके हाथकी बात नहीं है।

जैसे, भूख लगी तो यह पेटमें अन्नकी 'आवश्यकता' है और उसमें स्वाद चाहना कि अमुक भोजन मिले—यह 'कामना' है। आवश्यकता पूरी होती है, पर कामना आजतक किसीकी पूरी नहीं हुई। किसीके भी जीवनमें ऐसा नहीं हुआ कि सब कामनाएँ पूरी हो गयी हों। परन्तु आवश्यकताका विधान है कि वह पूरी होती है। इस तरह एक आवश्यकता होती है और एक कामना होती है। इनको आप ध्यानसे सुनो और धारण करो। वर्षोंतक मेरेको यह बात समझमें नहीं आयी। व्याख्यान देता था और दिया भी वर्षोंतक, पर आवश्यकता और कामना दो हैं—यह बात मेरेको बहुत देरीसे मिली। मेरेको ऐसी बातें बहुत कठिनतासे मिली हैं। इनके मर्मको समझनेमें मेरेको जोर पड़ा है और समय लगा है। यह आपको इसलिये कहा है कि आप इस बातका कुछ आदर करो। इसमें कोई आत्मश्लाघा नहीं, कोई महिमा नहीं, कोई विशेषता नहीं, नहीं तो पहले ही जान लेता। पर नहीं आयी अक्लमें! ऐसे कई झंझट थे, जो

गीतासे खुले हैं। परन्तु आप जानना चाहो तो बहुत सुगमतासे जान सकते हो। बहुत सरल, सीधी-सादी बातें हैं।

आवश्यकता और कामना क्या है? मूलमें आवश्यकता तो है परमात्माकी और कामना है संसारकी। यह मूल बात है। हम सदा जीते रहें, हम जानकार बनें, हम सदा सुखी रहें—यह आवश्यकता है; क्योंकि आपकी यह चाहना वास्तवमें सत्-चित्-आनन्दघन परमात्माकी है। परन्तु संसारकी जितनी आवश्यकता मानते हो, जितनी चाहना करते हो, वह सब-की-सब कामना है। ये दो भेद मेरेको मिले तो बड़ी प्रसन्नता हुई मनमें कि आज तो एक काँटा निकल गया भीतरसे! आवश्यकता और चीज है, कामना और चीज है। अंग्रेजीमें हमने want और desire—ये दो शब्द सुने हैं। मैंने अच्छे पढ़े-लिखोंसे पूछा कि इन दो शब्दोंमें क्या भेद है, पर वे ठीक तरहसे बता नहीं सके। जैसे मैं कहता हूँ कि आवश्यकता केवल परमात्माकी है और इच्छा केवल संसारकी है। पर इतना साफ नहीं बताया अंग्रेजी पढ़े-लिखोंने। आवश्यकता पूरी होनेवाली होती है, वह मिटनेवाली हो ही नहीं सकती। परमात्मतत्त्वकी जो आवश्यकता है और हमारी जो कमी है, वह पूरी हुए बिना कभी मिट नहीं सकती और कामना कभी पूरी नहीं हो सकती—यह नियम है। नियमका भंग होता हो तो बताओ।

**श्रोता—**रोटी-कपड़ा लोगोंकी आवश्यकता है; परन्तु यह बहुत-से लोगोंको सुलभ नहीं है?

**स्वामीजी—**भूखा तो लखपति और करोड़पतिको भी रहना पड़ सकता है। वैद्य, डॉक्टर मना कर दें तो करोड़ों रुपये पासमें होनेपर भी रोटी नहीं खा सकते। अतः रोटी-कपड़ा नहीं मिलता तो वहाँ आवश्यकता नहीं है। आवश्यकतावाली चीज तो मिलेगी ही। साफ कहा है—**'यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्'** अर्थात् जो

चीज हमें मिलनेवाली है, वह दूसरोंको नहीं मिल सकती। जो हमारी चीज है, वह हमारेसे अलग कैसे रहेगी? उसको मिलना पड़ेगा। कोई भूखा मरनेवाला हो, उसको भूखा ही मरना पड़ेगा। यह आवश्यक नहीं है कि अन्न-जल ही मिले। यह तो मैंने संसारकी रीतिमें दो चीज समझनेके लिये बतायी है कि भूख-प्यासकी आवश्यकता है और स्वादकी इच्छा है। वास्तवमें आवश्यकता है परमात्माकी और इच्छा है संसारकी। संसारकी इच्छा किसी भी तरहकी हो, वह सब कामना ही है, जो कभी पूरी होगी ही नहीं। परमात्माकी आवश्यकता कभी मिटेगी नहीं, आप जानें चाहे न जानें, मानें चाहे न मानें। आप नास्तिक हो जायँ तो भी भीतरसे परमात्माकी इच्छा नहीं मिटेगी। कारण कि जो ईश्वरको, परमात्माको बिलकुल नहीं मानते, वे भी हरदम रहना चाहते हैं, ज्ञान चाहते हैं, सुख-शान्ति चाहते हैं। उनकी यह इच्छा सच्चिदानन्दघन परमात्माकी है। रहना (जीना) चाहते हैं—यह 'सत्' की इच्छा हुई। ज्ञान चाहते हैं—यह 'चित्' की इच्छा हुई। सुख चाहते हैं—यह 'आनन्द' की इच्छा हुई। जो ईश्वरका खण्डन करता है, दुनियासे ईश्वरका नाम उठा देना चाहता है, ऐसे नास्तिक-से-नास्तिक आदमीके भीतर भी ईश्वर-प्राप्तिकी इच्छा रहती है। क्या वह जीना नहीं चाहता? क्या वह ज्ञान नहीं चाहता? क्या वह सुख नहीं चाहता? चाहता है तो सच्चिदानन्द परमात्माकी इच्छा है। इस चाहको कोई मिटा नहीं सकता; क्योंकि यह हमारी असली चाह है, असली जिज्ञासा है, असली भूख है। यह कभी मिटनेवाली नहीं है, प्रत्युत पूरी होनेवाली ही है। संसारकी इच्छा कभी किसीकी पूरी नहीं हुई, होगी नहीं, हो सकती नहीं। आपने भी देख लिया कि जीवनमें कभी इच्छा पूरी नहीं हुई। अब उसको छोड़नेमें क्या बाधा है?

**श्रोता**—हम इतना मान लें कि हमने सब छोड़ दिया तो क्या इतना माननेसे परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी?

**स्वामीजी**—नहीं होगी। यह कोई तमाशा नहीं है। भीतरसे इच्छा छोड़ोगे, तब होगी। मैंने इच्छा छोड़ दी—ऐसा कहनेसे क्या हो जायगा? केवल कहनेसे नहीं होगा। केवल ऊपरसे मान लेनेसे नहीं होगा। भीतरसे कोई इच्छा नहीं हो। जीनेकी भी इच्छा न हो। अभी मर जायँ तो कोई चिन्ता नहीं। इच्छा छोड़नेसे आप मरोगे नहीं और चाहनेपर भी बचोगे नहीं। मरना तो पड़ेगा ही, नहीं चाहनेपर भी और चाहना छोड़नेपर भी—यह पक्की बात कहता हूँ। आप विचार करो कि क्या अपनी चाहनासे हम जी रहे हैं। चाहनेमात्रसे कोई जी नहीं सकता। जीनेके उपायके लिये मैं मना नहीं करता। रोटी खाओ, दवाई लो, संयमसे रहो—यह बात मैं कहता हूँ। परन्तु हम जीते रहें—यह हमारे हाथकी बात नहीं है। इसमें आपको क्या बाधा लगती है? पूछो।

आप सोचते हैं तो उलटा सोचते हैं कि यह चुप कैसे हो जाय? ऐसा प्रश्न पूछें कि यह बोल नहीं सके। यह नहीं सोचते कि बातको काममें कैसे लायें? जैसे सरकारी कानूनके विषयमें सोचते हैं कि इस कानूनसे कैसे बचें? कैसे झूठ-कपट करें? कैसे चकमा दें? यही बर्ताव आप दूसरोंसे करते हैं। ऐसा करना ठीक नहीं है। आप ऐसा सोचो कि यह ममता कैसे मिटे? यह कामना कैसे मिटे? इसके लिये सोचना होता है, चेष्टा नहीं होती। वस्तुको ज्यों-की-त्यों रहने दो, एक कौड़ी भी खर्च मत करो; परन्तु 'यह मेरी नहीं है' इतना मान लो। आस्तिकके लिये बहुत सरल उपाय है कि 'यह सब भगवान्‌की है'। सच्ची बात है। आस्तिक आदमी सब वस्तुओंको भगवान्‌की मानते ही हैं। अब बोलो, ममता छूटेगी कि नहीं? हमारी है ही नहीं,

ठाकुरजीकी है। अब वस्तु चली जाय तो ठाकुरजीकी वस्तु चली गयी। रक्षा करना, ठीक तरहसे रखना हमारा काम है; क्योंकि हम ठाकुरजीके हैं तो हम ठाकुरजीकी चीजको निरर्थक नष्ट कैसे होने देंगे!

ठाकुरजीके विधानके अनुसार खर्च करेंगे; क्योंकि ठाकुरजीकी चीज है। कितना सुगम उपाय है! इस बातको भीतरसे पक्का मान लो। अब बेटा मर जाय तो हम चिन्ता क्यों करें? भगवान्‌का बेटा मरा। आप बिलकुल गिनाओ कि हमारे इतने बेटे हैं। गिनानेमें क्या हर्ज हुआ। आप केवल मेरापन छोड़ दो। उनका पालन-पोषण करो, रक्षा करो। अपनी जिम्मेवारीका पालन करो। भगवान्‌की दी हुई ड्यूटी है। गाड़ीमें बैठनेपर आप कहते हैं कि यह हमारा डिब्बा है, पर गाड़ीसे उतरनेके बाद आप कभी चिट्ठी देकर पूछते हो कि हमारा डिब्बा कैसे है? अतः व्यवहार करनेमें कोई बाधा नहीं लगती। व्यवहार सुचारुरूपसे करो। जैसा अभी करते हो, उससे भी सुचारुरूपसे करो। हमारी चीजकी परवाह नहीं, पर अब तो प्रभुकी चीज है! उसकी अच्छी तरहसे रक्षा करो।

मैं आपका दुःख मिटानेके लिये कहता हूँ। चीज मिटाने, नष्ट करनेके लिये नहीं कहता हूँ। चीज छोड़कर साधु हो जाइये—यह नहीं कहता हूँ। दुःख, सन्ताप, अभाव, व्याकुलता, हलचल मिटानेके लिये कहता हूँ। वही घर है, वही स्त्री है, वही परिवार है, वे ही रुपये हैं और वैसे ही आप हो, कुछ फर्क नहीं पड़ेगा, केवल आपकी चिन्ता मिट जायगी! परन्तु ममता, कामना रखोगे तो यह चिन्ता, हलचल, दुःख, सन्ताप कभी मिटनेका है ही नहीं। ममता, कामनाके रहते चिन्ता, हलचल न हो—यह असम्भव बात है। मनमें इच्छा रखे कि ऐसा हो और ऐसा न हो तो हलचल होगी ही।

**श्रोता**—तत्त्वका बोध होनेसे पहले ममता, कामना कैसे मिटेगी?

**स्वामीजी**—तत्त्वका बोध होनेसे ममता मिट जायगी और ममता मिटनेसे तत्त्वका बोध हो जायगा। खुशी आये, ज्यों कर लो। आपको जो सुगम पड़े, वह काम कर लो। कामना-ममताके रहते-रहते तत्त्वबोध हो जायगा! आप ध्यान दो मेरी बातपर।

गीताकी बात है—

**अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।**
**सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥**

(४। ३६)

सम्पूर्ण पापियोंसे भी जो अधिक पापी हो, वह भी ज्ञानरूपी नौकासे पापोंको तर जायगा। अतः पापी-से-पापी भी ज्ञानका अधिकारी हुआ कि नहीं? कामना तो दूर रही, पापी बताया है। मनुष्य कामनाके कारण ही पाप करता है (गीता ३। ३६-३७)। कामनासे होनेवाले बड़े-बड़े पापोंसे आप तर जाओगे। तात्पर्य है कि ज्ञान पहले भी मिल सकता है और कामना-ममताके त्यागसे भी मिल सकता है—'**विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः। निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥**' (गीता २। ७१)। ये दोनों प्रमाण गीतामें हैं। कामनाके विषयमें मेरेको ऐसी बहुत बातें याद हैं। इस विषयमें मैंने बहुत खोज की है और कर रहा हूँ।

❑❑

# मन-बुद्धि अपने नहीं

अपने स्वरूपमें स्थित होनेकी बात जहाँ आती है, वहाँ हम उन्हीं मन और बुद्धिसे स्थित होना चाहते हैं, जिनमें संसारके संस्कार पड़े हैं। वे मन और बुद्धि संसारकी तरफ ही दौड़ते हैं। हमारे पास मन और बुद्धि लगानेके अलावा कोई उपाय है नहीं। ऐसी स्थितिमें हम मन-बुद्धिसे कैसे अलग हों?

हम मन-बुद्धिको परमात्मामें लगाते हैं तो वे संसारकी तरफ जाते हैं। इसमें मुख्य बात यह है कि हमारे भीतरमें संसारका महत्त्व जँचा हुआ है। उत्पत्ति-विनाशशीलका जो महत्त्व अन्तःकरणमें बैठा हुआ है, उसको हमने बहुत ज्यादा आदर दे दिया है—यह बाधा हुई है। इस बाधाको विचारके द्वारा निकाल दो तो यह 'ज्ञानयोग' हो जायगा। इससे पिण्ड छुड़ानेके लिये भगवान्‌की शरण लेकर पुकारो तो यह 'भक्तियोग' हो जायगा। जितनी वस्तु अपने पास है, उसको व्यक्तिगत न मानकर दूसरोंकी सेवामें लगाओ और कर्तव्य-कर्म करो तो अपने लिये न करके केवल दूसरोंके हितके लिये करो तो यह 'कर्मयोग' हो जायगा। इन तीनोंमें जो आपको सुगम दीखे, वह शुरू कर दो।

वस्तुओंको व्यक्तियोंकी सेवामें लगाओ। समाधि भी सेवामें लगा दो। अपने शरीरको, मनको, बुद्धिको सेवामें लगा दो। केवल दूसरोंको सुख पहुँचाना है और स्वयं बिलकुल अचाह होना है। जडकी कोई भी चाह रखोगे तो बन्धन रहेगा, इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है। यह बात खास जँच जानी चाहिये कि संसारकी कोई भी चाह रखोगे तो दुःखसे, बन्धनसे कभी बच नहीं सकते; क्योंकि दूसरोंकी चाहना रखेंगे, दूसरोंसे सुख चाहेंगे

तो पराधीन होना ही पड़ेगा और *'पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं'* (मानस १।१०२।३)। कुछ भी चाह मत रखो तो दुःख मिट जायगा।

बुद्धि संसारमें जाती है तो उसको जाने दो। बुद्धि आपकी है कि आप बुद्धिके हो? स्वयं विचार करो, सुन करके नहीं। आपकी बुद्धि संसारमें जाती है तो आप बुद्धिमें अपनापन मत रखो। बुद्धि तो आपकी वृत्ति है। उसको चाहे जहाँ नहीं लगा सको तो उससे विमुख हो जाओ कि मैं बुद्धिका द्रष्टा हूँ, बुद्धिसे बिलकुल अलग हूँ। स्वयं बुद्धिको जाननेवाला है। बुद्धि एक करण है और परमात्मतत्त्व करण-निरपेक्ष है। पढ़ाईके समय भी मेरी यह खोज रही है कि जीवका कल्याण कैसे हो? मेरेको जब यह बात मिली कि परमात्मतत्त्व करण-निरपेक्ष है, तब मुझे बड़ा लाभ हुआ, बड़ी प्रसन्नता हुई। आप इस बातपर आरम्भमें ही ध्यान दो तो बड़ा अच्छा रहे! तत्त्व वृत्तिके कब्जेमें नहीं आयेगा। प्रकृतिकी वृत्ति प्रकृतिसे अतीत तत्त्वको कैसे पकड़ेगी? अतः यह विचार आप पक्का कर लो कि तत्त्वकी प्राप्ति करण-निरपेक्ष है, करण-सापेक्ष नहीं है। करण-निरपेक्षको हम कैसे मानें? करणकी तरफसे आप चुप हो जाओ। करणको न अच्छा समझो, न मन्दा समझो। यदि करणको कर्ता ग्रहण नहीं करे तो कर्ता करणसे स्वतः अलग है। करणसे अपनेको अलग अनुभव करके चुप हो जाओ। अगर हो सके तो सेकेण्ड, दो सेकेण्ड चुप हो जाओ, चिन्तन कुछ भी मत करो—'**आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्**' (गीता ६।२५)। कुछ भी चिन्तन नहीं करोगे तो आपकी स्थिति स्वरूपमें होगी। यह बहुत ही बढ़िया साधन है।

हम कुछ भी चिन्तन नहीं करते, पर चिन्तन हो जाता है तो क्या करें? इस विषयमें एक बात विशेष ध्यान देनेकी है

कि जब कोई चिन्तन आता है, तब साधक उसको हटाता है। साधन करनेवालोंका प्राय: यही उद्योग रहता है कि दूसरी बात याद आये तो उसको हटाओ और परमेश्वरमें लगाओ। इस उद्योगसे जल्दी सिद्धि नहीं होती, साधक जल्दी सफल नहीं होता। सफलताकी कुंजी यह है कि उस चिन्तनकी उपेक्षा कर दो। कोई ऊँची या नीची वृत्ति आये तो उसको महत्त्व मत दो। वृत्तिको न हटाओ और न लगाओ। हटाओ तो वृत्तिको महत्त्व दिया और लगाओ तो वृत्तिको महत्त्व दिया। वृत्तिको महत्त्व देनेसे जडताका महत्त्व आयेगा, स्वरूपका महत्त्व नहीं रहेगा। यह मार्मिक बात है। आपकी दृष्टि इधर हो जाय, इसलिये कहता हूँ कि यह बात मेरेको बहुत प्रिय लगी है, बहुत उत्तम लगी है। इससे बहुत लाभ होता है।

मन-बुद्धिकी उपेक्षा करो। उसमें अच्छा-मन्दा कुछ भी आये, कुछ भी चिन्तन मत करो। जो चिन्तन आ जाय, उसकी उपेक्षा कर दो। उसके साथ विरोध मत करो, उसको हटाओ मत, पकड़ो मत। यदि यह उपेक्षा करनेकी अटकल आ जाय तो बहुत लाभ होगा। चिन्तनसे उदासीन हो जाओ। न उसको भला समझो, न उसको बुरा समझो। भला समझनेसे भी सम्बन्ध जुड़ता है और बुरा समझनेसे भी सम्बन्ध जुड़ता है। जिन्होंने भगवान्‌से प्रेम किया, उनका भी उद्धार हुआ और जिन्होंने भगवान्‌से वैर किया, उनका भी उद्धार हुआ। परन्तु जिन्होंने कुछ भी नहीं किया, उनका उद्धार नहीं हुआ। अत: संसारसे प्रेम करोगे तो फँसोगे, वैर करोगे तो फँसोगे; क्योंकि प्रेम या वैर करनेसे संसारका सम्बन्ध हो जायगा। संसारका सम्बन्ध तोड़ना ज्ञानयोगकी खास बात है।

विवेक सत्-असत्‌का निर्णय करता है। अत: विवेकको महत्त्व देकर असत्‌की उपेक्षा कर दो। वृत्तियाँ पैदा होती हैं और नष्ट

होती हैं, इस कारण ये असत् हैं। जिसका उत्पत्ति-विनाश होता है तथा जिसका आरम्भ और अन्त होता है, वह असत् है। जो असत् है, वह अपने-आप मिटता है; अतः उसको मिटानेका उद्योग करना बिलकुल निरर्थक है। जो उत्पन्न हुआ है, उसका खास काम मिटना ही है। लड़का पैदा हुआ तो उसका आवश्यक काम क्या है? आवश्यक काम है—मरना! वह बड़ा होगा कि नहीं, उसका ब्याह होगा कि नहीं, उसके बेटा-बेटी होंगे कि नहीं—इसमें सन्देह है, पर वह मरेगा कि नहीं—इसमें सन्देह नहीं है। अतः उसका खास काम मरना ही है। इसी तरह वृत्ति पैदा हुई तो उसका खास काम नष्ट होना ही है। इसलिये उसको नष्ट करनेके लिये उद्योग करना, बल लगाना, बुद्धि लगाना, समय लगाना बिलकुल मूर्खता है और उसको रखनेकी चेष्टा करना भी मूर्खता है। जो चीज रहेगी ही नहीं, उसको रखनेकी इच्छा करना ही तो महान् दुःख है। परन्तु हमारे भाई चेतते ही नहीं, क्या करें! न तो रखनेकी इच्छा करनी है और न हटानेकी इच्छा करनी है; किन्तु अपने कर्तव्यका पालन करना है, जिससे सबको सुख हो, आराम हो। जो अपने-आप मिट जायगी, रहेगी नहीं, उसकी उपेक्षा कर दो—'***देखो निरपख होय तमाशा***'। यह बहुत लाभकी चीज है। अतः बुद्धिसे तटस्थ हो जाओ कि हमें मतलब नहीं इससे। तटस्थ हुआ नहीं जाता—ऐसा मत मानो। अभी ऐसा दीखता है कि इससे हम अलग नहीं हो सकते, पर ऐसी बात है नहीं। इसके लिये युक्ति बतायी कि आप बुद्धिके हो या बुद्धि आपकी है। यह मामूली बात नहीं है, बहुत ही कामकी बात है। बुद्धिके हम नहीं हैं, हमारी बुद्धि है। हमारी बुद्धि है; अतः इसको हम काममें लें या न लें। परन्तु हम बुद्धिके होते तो मुश्किल हो जाती।

वृत्तिकी उपेक्षा करो तो आपकी स्वरूपमें स्थिति स्वतःसिद्ध

है। परन्तु वृत्तिका निरोध करनेमें बहुत अभ्यास करना पड़ेगा। वृत्तिकी उपेक्षामें कोई अभ्यास नहीं है। गीताका योग क्या है? '**समत्वं योग उच्यते**' (२। ४८)। '**सम**' नाम परमात्माका है। परमात्मामें स्थित होना गीताका योग है और चित्तवृत्तियोंका निरोध करना योगदर्शनका योग है। आप कहते हैं कि मन नहीं रुकता! पर मन रोकनेकी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है परमात्मामें स्थित होनेकी। जहाँ आप चुप होते हैं, वहाँ आप परमात्मामें ही हैं और परमात्मामें ही रहोगे; क्योंकि कोई भी क्रिया, वृत्ति, पदार्थ, घटना, परिस्थिति परमात्माको छोड़कर हो सकती है क्या? वस्तु, व्यक्ति, पदार्थ, घटना आदिकी उपेक्षा कर दो तो परमात्मामें ही स्थिति होगी। हाँ, इसमें नींद-आलस्य नहीं होना चाहिये। नींदमें तो अज्ञान (अविद्या) में डूब जाओगे। नींद खुलनेपर कहते हैं कि 'मेरेको कुछ पता नहीं था', पर आप तो उस समय थे ही। अतः नींद-आलस्य तो हो नहीं और चलते-फिरते भी आप चुप हो जायँ, कुछ भी चिन्तन न करें। यह गीताका योग है। इससे बहुत जल्दी सिद्धि होगी। योगदर्शनके योगमें बहुत समय लगेगा। आप परमात्मामें वृत्ति लगाओगे तो वृत्ति आपका पिण्ड नहीं छोड़ेगी, वृत्ति साथ रहेगी। इसलिये मन-बुद्धिकी उपेक्षा करो, उनसे उदासीन हो जाओ। अभी लाभ मत देखो कि हुआ तो कुछ नहीं! आप इसकी उपेक्षा कर दो। दवाईका सेवन करो तो वह गुण करेगी ही।

आप खयाल करें। बुद्धि करण है और मैं कर्ता हूँ; बुद्धि मेरी है, मैं बुद्धिका नहीं हूँ—यह सम्बन्ध-विच्छेद बहुत कामकी चीज है। आप बुद्धि हो ही नहीं। कुत्ता चिन्तन करता है तो आपपर क्या असर पड़ता है? कुत्तेकी बुद्धिके साथ अपना जैसा सम्बन्ध है, वैसा ही अपनी बुद्धिके साथ सम्बन्ध है। आपकी आत्मा सर्वव्यापी है तो कुत्तेमें भी आपकी आत्मा है। फिर आप

कुत्तेके मन-बुद्धिकी चिन्ता क्यों नहीं करते? कि कुत्तेके मन-बुद्धिको आपने अपना नहीं माना। तात्पर्य यह हुआ कि मन-बुद्धिको अपना मानना ही गलती है।

जो अलग होता है, वह पहलेसे ही अलग होता है। सूर्यसे प्रकाशको कोई अलग कर सकता है क्या? आप शरीरसे अलग होते हैं तो पहलेसे ही आप शरीरसे अलग हैं। आप मुफ्तमें ही अपनेको शरीरके साथ मानते हैं। शरीरमें आप नहीं हो और आपमें शरीर नहीं है। खुद जडतामें बैठ गये तो अहंता हो गयी और जडताको अपनेमें बैठा लिया तो ममता हो गयी। अहंता-ममतासे रहित हुए तो शान्ति स्वतःसिद्ध है—'**निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति**' (गीता २।७१)।

❑❑

॥ श्रीहरि: ॥

# परम श्रद्धेय स्वामी रामसुखदासजीके कल्याणकारी साहित्य

| कोड | पुस्तक |
|---|---|
| 465 | साधन-सुधा-सिन्धु (४३ पुस्तकें एक ही जिल्दमें) |
| 1675 | सागरके मोती |
| 1598 | सत्संगके फूल |
| 1633 | एक संतकी वसीयत |
| 400 | कल्याण-पथ |
| 401 | मानसमें नाम-वन्दना |
| 605 | जित देखूँ तित तू |
| 406 | भगवत्प्राप्ति सहज है |
| 535 | सुन्दर समाजका निर्माण |
| 1485 | ज्ञानके दीप जले |
| 1447 | मानवमात्रके कल्याणके लिये |
| 1175 | प्रश्नोत्तर मणिमाला |
| 1247 | मेरे तो गिरधर गोपाल |
| 403 | जीवनका कर्तव्य |
| 436 | कल्याणकारी प्रवचन |
| 405 | नित्ययोगकी प्राप्ति |
| 1093 | आदर्श कहानियाँ |
| 407 | भगवत्प्राप्तिकी सुगमता |
| 408 | भगवान्से अपनापन |
| 861 | सत्संग-मुक्ताहार |
| 860 | मुक्तिमें सबका अधिकार |
| 409 | वास्तविक सुख |
| 1308 | प्रेरक कहानियाँ |
| 1408 | सब साधनोंका सार |
| 411 | साधन और साध्य |
| 412 | तात्त्विक प्रवचन |
| 414 | तत्त्वज्ञान कैसे हो? एवं मुक्तिमें सबका समान अधिकार |
| 410 | जीवनोपयोगी प्रवचन |
| 822 | अमृत-बिन्दु |
| 821 | किसान और गाय |
| 417 | भगवन्नाम |
| 416 | जीवनका सत्य |
| 418 | साधकोंके प्रति |
| 419 | सत्संगकी विलक्षणता |
| 545 | जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग |
| 420 | मातृशक्तिका घोर अपमान |
| 421 | जिन खोजा तिन पाइयाँ |
| 422 | कर्मरहस्य |
| 424 | वासुदेवः सर्वम् |
| 425 | अच्छे बनो |
| 426 | सत्संगका प्रसाद |
| 1733 | संत-समागम |
| 1019 | सत्यकी खोज |
| 1479 | साधनके दो प्रधान सूत्र |

| कोड | पुस्तक | कोड | पुस्तक |
|---|---|---|---|
| 1035 | सत्यकी स्वीकृतिसे कल्याण | 433 | सहज साधना |
| 1360 | तू-ही-तू | 444 | नित्य-स्तुति और प्रार्थना |
| 1434 | एक नयी बात | 435 | आवश्यक शिक्षा |
| 1440 | परम पितासे प्रार्थना | 1072 | क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं? |
| 1441 | संसारका असर कैसे छूटे? | 515 | सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन |
| 1176 | शिखा ( चोटी ) धारणकी आवश्यकता और...... | 438 | दुर्गतिसे बचो |
| 431 | स्वाधीन कैसे बनें? | 439 | महापापसे बचो |
| 702 | यह विकास है या... | 440 | सच्चा गुरु कौन? |
| 589 | भगवान् और उनकी भक्ति | 729 | सार-संग्रह एवं सत्संगके अमृत-कण |
| 617 | देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम | 445 | हम ईश्वरको क्यों मानें? |
| 434 | शरणागति | 745 | भगवत्तत्त्व |
| 770 | अमरताकी ओर | 632 | सब जग ईश्वररूप है |
| 432 | एकै साधे सब सधै | 447 | मूर्तिपूजा-नाम-जपकी महिमा |
| 427 | गृहस्थमें कैसे रहें? | | |

## गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कुछ साधन-भजनकी पुस्तकें

| कोड | पुस्तक | कोड | पुस्तक |
|---|---|---|---|
| 052 | स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद | 140 | श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली |
| 819 | श्रीविष्णुसहस्रनाम—शांकरभाष्य | 142 | चेतावनी-पद-संग्रह |
| 207 | रामस्तवराज—(सटीक) | 144 | भजनामृत—६७ भजनोंका संग्रह |
| 211 | आदित्यहृदयस्तोत्रम् | 1355 | सचित्र-स्तुति-संग्रह |
| 224 | श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र | 1214 | मानस-स्तुति-संग्रह |
| 231 | रामरक्षास्तोत्रम् | 1344 | सचित्र-आरती-संग्रह |
| 1594 | सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह | 1591 | आरती-संग्रह—मोटा टाइप |
| 715 | महामन्त्रराजस्तोत्रम् | 208 | सीतारामभजन |
| 054 | भजन-संग्रह | | |